

अल-हिमाल

नवंबर-दिसंबर 2025



माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें। नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम
ख़ुर्रम इस्लाम कुरैशी
आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
फ़रहाद अहमद, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International

1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013

 info@cpsglobal.org

 www.cpsglobal.org



cpsglobal.org



twitter.com/WahiduddinKhan



facebook.com/maulanawkhan



youtube.com/CPSInternational



+91-99999 44118



t.me/maulanawahiduddinkhan



linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan



instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact

Goodword Books

Tel. 011-41827083,

Mobile: +91-8588822672

E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details

Goodword Books

State Bank of India

A/c No. 30286472791

IFSC Code: SBIN0009109

Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

शॉर्ट कट नहीं	4
तक्रवा की अलामत	5
खुदा की बादशाहत	7
कुर्बत-ए-खुदावंदी	8
मुहब्बत का नज़राना	9
अल्लाह से हुब्ब-ए-शदीद	11
रसूल को मानना	14
फ़ुक्रदान-ए-मारिफ़त का दौर	16
रसूल की इताअत	16
क्रौमी बेइज़्जती या मुहब्बत-ए-रसूल	18
एकतरफ़ा सोच	19
इंसान का मक़सद-ए-तख़लीक़	21
शैतान का मुक़ाबला	23
तज़ईन क्या है	25
फ़ितरत का अमल	27
बुढ़ापे का सबक़	27
कन्फ़्यूज़न क्यों?	29
दफ़अ का क़ानून	30
दज्जाल का फ़िल्ना	34

निशानियों का जाहिर होना	41
यहूद की मिसाल	45
बामक्रसद जिंदगी	48
तरीक़-ए-मुताला	49
लिखने का कल्चर	52
लो प्रोफ़ाइल, हाई प्रोफ़ाइल	53
डायरी 1986	56
एक इंटरव्यू	61
ईमान का लिबास	64
ख़बरनामा इस्लामी मरकज़	65
नई किताबें	68

शॉर्ट कट नहीं



ज़ेर-ए-नज़र शुमारा 2025 का आखिरी शुमारा है। यानी नए साल के मौक़े पर यह शुमारा आप कारिर्इन के हाथों में होगा। यह बात सोचते हुए अंग्रेज़ी ज़बान का एक मक़ूला मुझे याद आया, वह मक़ूला यह है— दो पॉइंट्स के दरमियान शॉर्ट कट सबसे लंबी दूरी है।

A shortcut is the longest distance between two points.

एक साल का गुज़रना सादा तौर पर पुराने कैलेंडर को हटा कर नए साल का कैलेंडर लगाने की मानिंद एक लम्हे का वाक़िया नहीं है। यह ज़िंदगी के सफ़र का एक लंबा मरहला है, जो अंग्रेज़ी कैलेंडर के मुताबिक 365 दिनों में मुकम्मल होता है। यही मामला इंसान की कामयाबी का है। किसी इंसान के लिए दुरुस्त प्लानिंग और मेहनत उस वक़्त नतीजाखेज़ साबित होती है, जब कि वह सब्र के साथ इंतज़ार का तरीक़ा इख्तियार करता है। यही फ़ितरत का क़ानून है। मगर इंसान अक्सर हालात में फ़ौरी तौर पर अपनी कोशिश का नतीजा देखना चाहता है। इंडियन टीवी एक्टर अभिषेक बजाज (b. 1991) ने एक इंटरव्यू में कहा कि एक्टिंग में कामयाबी के लिए कोई शॉर्ट कट नहीं है, और न कोई ताल्लुक़ और रिश्ता काम आता है। इंसान को चाहिए कि वह संजीदगी के साथ सख़्त मेहनत करे, वह तसलसुल के साथ अपनी सलाहियत को बेहतर बनाता रहे तब यक़ीनन उसको कामयाबी मिलेगी।

“There is no shortcut to becoming an actor. You have to be honest and hardworking. You cannot just depend on the contacts you make in the industry; you need to keep working on your craft. You have to keep improving

your skills and that's when people will believe in your work," says Abhishek. (Delhi Times, 12 January 2022, p. 6)

यह उसूल सिर्फ एक्टिंग की फ़िल्ड तक महदूद नहीं, बल्कि ज़िंदगी के दीगर तमाम मैदानों में कामयाबी के लिए भी यही उसूल है। जब इंसान कोई काम करता है तो उसमें पचास फ़ीसद से भी कम हिस्सा उसकी अपनी कोशिश का होता है, जब कि पचास फ़ीसद से ज़्यादा किरदार क़ानून-ए-फ़ितरत (Law of Nature) का होता है। फ़ितरत का क़ानून ख़ालिक के मुक़र्रर करदा उसूलों के मुताबिक अपनी रफ़्तार से चलता है। ऐसी हालत में अगर इंसान कोशिश करते हुए जल्दबाज़ी का तरीक़ा इख़्तियार न करे तो गोया कि वह फ़ितरत को उसके हिस्से का काम करने का मौक़ा दे रहा है। ऐसे ही इंसान के लिए उम्मीद है कि वह कामयाब हो।

(डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम)

तक्रवा की अलामत



क़ुरआन में क़ुर्बानी के जानवर को शईरा कहा गया है। इसके बाद इरशाद हुआ है कि अल्लाह को उन जानवरों का गोश्त और ख़ून नहीं पहुँचता बल्कि उसको तुम्हारा तक्रवा पहुँचता है (22:37)। अगर जानवरों की क़ुर्बानी से सादा तौर पर सिर्फ़ जानवर की क़ुर्बानी मुराद हो तो यहाँ यह कहना बे-मौक़ा है कि ख़ुदा को तुम्हारा ज़बह किया हुआ जानवर नहीं पहुँचता बल्कि तुम्हारे दिल का तक्रवा पहुँचता है।

अस्ल यह है कि इस्लाम में कुछ चीज़ें बतौर शईरा या अलामत (symbolic) मुक़र्रर की गई हैं। इन्हीं में से एक क़ुर्बानी का जानवर भी

है। शईरा उस चीज़ को कहते हैं जो किसी मानवी हकीकत (human reality) के लिए ज़ाहिरी अलामत का काम दे। मसलन अल्लाह तआला को यह मतलूब है कि बंदे अपने शैतानी जज़्बात को अल्लाह की खातिर ज़बह करें। यह एक नफ़िसयाती ज़बह है और इस नफ़िसयाती ज़बह की अलामत के तौर पर जानवरों की कुर्बानी का हुक्म दिया गया है। कुर्बानी करते हुए आदमी अपनी ज़बान से यह अल्फ़ाज़ अदा करता है, जिसका तर्जुमा यह है, “मेरी नमाज़ और मेरी कुर्बानी और मेरी ज़िंदगी और मेरी मौत सब अल्लाह के लिए है” (6:162)। इससे मालूम होता है कि कुर्बानी की एक रूह है, और दूसरी ज़ाहिरी अलामत है। हकीक़ी कुर्बानी उसी शाख्स की है, जिसकी कुर्बानी, खुदा के वास्ते, उसके जज़्बात व एहसासात की कुर्बानी का एक अमली ज़रिया बन जाए।

रोज़ा भी इसी तरह की एक अलामत है। खाना-पीना छोड़ने का मक़सद दरअसल गुनाहों को छोड़ने की अलामत के तौर पर मुक़र्रर किया गया है। ग़िज़ा आदमी की ज़रूरियात की आखिरी हद है। रोज़े में ग़िज़ा का तर्क बंदे की तरफ़ से इस बात का इज़हार है कि खुदाया, दूसरी चीज़ें तो दरकिनार, मैं पानी और खाना तक को तेरी खातिर छोड़ने के लिए तैयार हूँ।

हदीस में है कि जो शाख्स झूठ बोलना और झूठ पर अमल करना न छोड़े तो खुदा को उसकी हाजत नहीं कि वह अपना खाना और पानी छोड़ दे (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1903)।

इसका मतलब यह है कि रोज़े की अस्ल बुराइयों से बचना है। जो शाख्स बुराइयों को न छोड़े और वक़्ती तौर पर सिर्फ़ खाना और पीना छोड़ दे, उसने गोया ज़ाहिरी अमल को काफ़ी समझा और असली अमल से गाफ़िल रहा। ऐसा बे-रूह अमल खुदा के यहाँ इस काबिल है कि वह रद्द कर दिया जाए।



खुदा की बादशाहत



बाइबल के अहदनामा जदीद में हज़रत मसीह ने अपने हवारियों को एक तालीम दुआ के अंदाज़ में इस तरह दी है— पस तुम इस तरह दुआ किया करो कि ऐ हमारे बाप तू जो आसमान पर है, तेरा नाम पाक माना जाए, तेरी बादशाही आए, तेरी मर्ज़ी जैसी आसमान पर पूरी होती है, ज़मीन पर भी हो।

This is how you should pray: ‘Our Father in heaven, hallowed be your name, your kingdom come, your will be done, on earth as it is in heaven.’ (Matthew, 6:9-10)

इसका मतलब यह नहीं है कि खुदा की बादशाही जिस तरह आसमानों में क़ायम है, उसी तरह हमको यह करना है कि लड़ कर इस दुनिया में खुदा की बादशाही को भी क़ायम करें। इस में दरअसल खुदा की उस स्कीम को बताया गया है, जिसके तहत उसने दुनिया की तख़्तलीक़ की। यानी खुदा तमाम आलम का मुतलक़ हाकिम है, तमाम आलम में उस का हुक्म कुल्ली तौर पर क़ायम है। लेकिन इंसानी दुनिया में उसने वक़्ती तौर पर इंसान को आज़ादी दे रखी है। एक वक़्त आएगा, जब कि यह आज़ादी ख़त्म हो जाएगी, और इंसानी दुनिया भी उसी तरह बराहे-रास्त तौर पर खुदा के हुक्म के तहत आ जाएगी, जिस तरह बक्रिया दुनिया है।

इस तख़्तलीक़ी मंसूबा को क़ुरआन में इस तरह बयान किया गया है लोगों ने अल्लाह की क़द्र न की जैसा कि उसकी क़द्र करने का हक़ है। और ज़मीन सारी उसकी मुठ्ठी में होगी क्रियामत के दिन और तमाम आसमान लिपटे होंगे उसके दाहिने हाथ में। वह पाक और बरतर है उस शिर्क से जो यह लोग करते हैं (39:67)।

इस आयत की तशरीह एक हदीस-ए-रसूल में इस तरह आई है:

يَقْبِضُ اللَّهُ تَبَارَكَ وَتَعَالَى الْأَرْضَ يَوْمَ الْقِيَامَةِ، وَيَطْوِي السَّمَاءَ بِيَمِينِهِ ثُمَّ يَقُولُ: أَنَا الْمَلِكُ أَيْنَ مُلُوكُ الْأَرْضِ؟

यानी, अल्लाह तआला क्रियामत के दिन ज़मीन को मुठी में ले लेगा, और आसमान को अपने दाहिने हाथ में लपेट कर रख लेगा, और कहेगा कि मैं बादशाह हूँ, ज़मीन के बादशाह कहाँ हैं। (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2787)।

मंसूबा-ए-तखलीक की रौशनी में इंसान के लिए हकीकत-पसंदाना रवैया सिर्फ़ एक है, यानी वह अपने आपको अल्लाह रब्बुल आलमीन के सामने सरेंडर (surrender) करे। वह बज़ाहिर बा-इख्तियार होने के बावजूद अल्लाह की इस दुनिया में तवाज़ो (modesty) के साथ ज़िंदगी गुज़ारे।

कुर्बत-ए-ख़ुदावंदी



कुरआन की सूरह-ए-अल्क्र में एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है

وَاسْجُدْ وَاقْتَرِبْ

यानी, सज्दा कर और मेरे करीब हो जा। (19:96)।

बंदा और ख़ुदा के दरमियान कुर्बत की यह बात एक हदीस-ए-रसूल में इन अल्फ़ाज़ में आई है

أَقْرَبُ مَا يَكُونُ الْعَبْدُ مِنْ رَبِّهِ وَهُوَ سَاجِدٌ

यानी, इंसान अपने रब से सबसे ज़्यादा करीब उस वक़्त होता है, जब कि वह सज्दे में हो। (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 482)

बंदा और खुदा के दरमियान कुर्बत की यह बात बाइबल में भी आई है। अहद नामा क़दीम के बारे में ज़बूर में हज़रत दाऊद की ज़बान से आया है लेकिन मेरे लिए यही भला है कि मैं खुदा की नज़दीकी हासिल करूँ, मैंने खुदावंद को अपनी पनाह गाह बना लिया है

But it is good for me to draw near to God: I have put my trust in the Lord God. (Psalm, 73:28)

सूरह-ए-अलक़ की आयत और सहीह मुस्लिम की हदीस में सज्दा का लफ़्ज़ अलामती मानी में है, न कि हक़ीक़ी मानी में। सज्दे का असली मतलब पूरी तरह किसी के हवाले कर देना (total submission) है। यह सरेंडर असल में एक ऐसा एहसास है, जो इंसान के अंदर से पैदा होता है। नमाज़ में अल्लाह के लिए पेशानी ज़मीन पर रखना इसी अंदरूनी सरेंडर की एक बाहरी अलामत है। वही सज्दा सज्दा है, जिसमें यह हक़ीक़त पाई जाए। जो सज्दा इस हक़ीक़त से ख़ाली हो वह सिर्फ़ एक बे-रूह रस्म है, न कि कुर्बत-ए-खुदावंदी का एक ज़िंदा तजुर्बा।

जब एक शख्स नमाज़ अदा करता है तो आख़िर में वह अपनी पेशानी ज़मीन पर रख देता है, जिसको सज्दा कहा जाता है। मगर नमाज़ी इस सज्दे से पहले और बहुत से अफ़आल करता है। यह तमाम अमल दरअसल सज्दे से पहले (pre-sajdah) का मरहला हैं। सज्दे से पहले किए जाने वाले अमल गोया सज्दे की तैयारी हैं, और सज्दा इस तैयारी की आख़िरी मंज़िल है।

मुहब्बत का नज़राना



क़ुरआन की एक आयत है जिसका तर्जुमा यह है: और बाज़ इंसान वह हैं जो अल्लाह के सिवा दूसरों को उसके बराबर ठहराते हैं।

उनसे ऐसी मुहब्बत करते हैं जैसी मुहब्बत अल्लाह से करना चाहिए। और जो ईमान वाले हैं वह अल्लाह ही से सबसे ज़्यादा मुहब्बत करते हैं (2:165)।

आदमी अपनी फ़ितरत और अपने हालात के लिहाज़ से एक ऐसी मख़्लूक है जो हमेशा बाहरी सहारा चाहता है, एक ऐसी हस्ती जो उसकी कमियों की तलाफ़ी करे, और उसके लिए एतमाद व यक़ीन की बुनियाद हो। किसी को इस हैसियत से अपनी ज़िंदगी में शामिल करना उसको मअबूद बनाना है। जब आदमी किसी हस्ती को अपना मअबूद बनाता है तो उसके बाद लाज़िमी तौर पर ऐसा होता है कि आदमी की मुहब्बत और अकीदत के जज़्बात उसके लिए ख़ास हो जाते हैं। आदमी ऐन अपनी फ़ितरत के लिहाज़ से मजबूर है कि वह किसी से हुब्ब-ए-शदीद करे और जिससे कोई शख्स हुब्ब-ए-शदीद करे वही उसका मअबूद है।

मौजूदा दुनिया में चूँकि ख़ुदा नज़र नहीं आता इसलिए ज़ाहिर-परस्त इंसान आम तौर पर नज़र आने वाली हस्तियों में से किसी हस्ती को वह मक़ाम दे देता है जो दरअसल ख़ुदा को देना चाहिए। यह हस्तियाँ अक्सर वह सरदार या पेशवा होते हैं, जिनको आदमी “बड़ा” समझ लेता है और फिर वह धीरे-धीरे लोगों की तवज्जोहात का मरकज़ बन जाते हैं। लोग इस तरह उनके गिरवीदा हो जाते हैं जैसा गिरवीदा उन्हें सिर्फ़ ख़ुदा का होना चाहिए। आदमी की फ़ितरत का ख़ला जो हक़ीक़तन इसलिए था कि उसको ख़ुदा से पुर किया जाए वहाँ किसी ग़ैर-ए-ख़ुदा को बिठा लिया जाता है।

इंसान के पास किसी को देने के लिए जो सबसे बड़ी चीज़ है वह मुहब्बत है। ऐसी हालत में यह मुमकिन नहीं कि कोई शख्स ख़ुदा जैसी बा-कमाल हस्ती को पाए और उसकी ख़िदमत में आला दर्जे की मुहब्बत से कमतर की कोई चीज़ पेश करे। मुहब्बत से कम कोई चीज़

न तो खुदा क़बूल करता और न किसी इंसान के लिए जायज़ है कि वह खुदा के हुज़ूर में मुहब्बत से कम किसी चीज़ का नज़राना पेश करे। अपनी चीज़ों में से कमतर किसी चीज़ का हदिया खुदा को पेश करना सिर्फ़ इस बात का सुबूत है कि आदमी ने खुदा को उसके जलाल व कमाल के साथ पाया ही नहीं।

अल्लाह से हुब्ब-ए-शदीद



कुरआन में बताया गया है कि हुब्ब-ए-शदीद का हक़दार सिर्फ़ अल्लाह तआला है।

कुरआन की इस आयत का तर्जुमा यह है:

कुछ लोग ऐसे हैं, जो लोग अल्लाह के सिवा दूसरों को उसका साझी और उसके बराबर (निद्) ठहराते हैं। वह उनसे ऐसी मुहब्बत रखते हैं, जैसी अल्लाह से रखनी चाहिए। और जो अहल-ए-ईमान हैं, वह सबसे ज़्यादा अल्लाह से मुहब्बत रखने वाले हैं। और अगर यह ज़ालिम उस वक़्त को देख लें जबकि वह अज़ाब से दो-चार होंगे तो वह समझ लेते कि ज़ोर सारा का सारा अल्लाह का है और अल्लाह बड़ा अज़ाब देने वाला है। (2:165)

मुहब्बत का मतलब गहरा क़ल्बी ताल्लुक़ (strong affection) है। मुहब्बत का यह गहरा ताल्लुक़ सिर्फ़ अल्लाह से मतलूब है। मज़कूरा आयत से यह मालूम होता है कि अल्लाह से हुब्ब-ए-शदीद का राज़ क्या है। अल्लाह से हुब्ब-ए-शदीद बिला-शुब्हा ईमान का आला तरीन दर्जा है। यह दर्जा सिर्फ़ उस इंसान को मिलता है, जो इस हकीक़त को शऊरी तौर पर दरियाफ़्त करे कि कुव्वत सिर्फ़ अल्लाह के हाथ में

है। अल्लाह कामिल मानों में साहिब-ए-कुव्वत (All-Powerful) है जबकि दूसरे तमाम लोग, जिनमें नबी और बुजुर्ग भी शामिल हैं, अपनी ज्ञात में पूरी तरह बेकुव्वत (All-Powerless) हैं। यही वह दरियाफ्त है जिससे किसी आदमी के अंदर अल्लाह के लिए वह कैफ़ियत पैदा होती है, जिसको हुब्ब-ए-शदीद कहा गया है।

मुहब्बत का ताल्लुक हमेशा उसके वजहों से होता है। किसी इंसान के अंदर अल्लाह के लिए हुब्ब-ए-शदीद सिर्फ़ उस वक्त पैदा होता है जब कि उसके ज़ेहन में उसके लिए गहरा सबब (strong reason) मौजूद हो। इस हकीकत का ज़िंदा शऊर कि कुव्वत सारी की सारी सिर्फ़ एक अल्लाह के हाथ में है। यही वह गहरा सबब है, जो किसी इंसान के अंदर अल्लाह के लिए हुब्ब-ए-शदीद का चश्मा जारी करता है। मज़ीद यह कि नफ़िसयाती एतबार से कुव्वत कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे बाँटा जा सके। अदना दर्जे में भी अगर किसी और के लिए कुव्वत को मान लिया जाए तो अल्लाह के लिए गहरी मुहब्बत ख़त्म हो जाएगी। चाहे वह दूसरा शख्स सियासी मायनों में ताक़त वाला माना जाए, या दौलत के एतबार से ताक़त का मालिक समझा जाए, या यह समझ लिया जाए कि उसे आख़िरत में नजात दिलाने का इख़्तियार हासिल है।

ऊपर ज़िक्र की गई आयत में ‘निद्’ का लफ़्ज़ आया है। इसका लफ़्ज़ी मतलब है मिस्ल, हम-पल्ला और शरीक, वग़ैरह। इस आयत में निद् का लफ़्ज़ इस मानी में इस्तेमाल हुआ है कि कुव्वत के एतबार से किसी को अदनादर्जे में भी अल्लाह के बराबर न समझा जाए। रसूलुल्लाह ﷺ इस मामले में बेहद हस्सास थे। एक बार एक सहाबी ने आप को मुखातिब करते हुए कहा:

‘जो अल्लाह चाहे और जो आप चाहें’।

यह सुनते ही आपके चेहरे का रंग बदल गया। आपने सख्ती के लहजे में कहा:

‘क्या तुमने मुझको अल्लाह के बराबर कर दिया। तुमको इस तरह कहना चाहिए:

‘वही होगा जो सिर्फ़ एक अल्लाह चाहे’। (मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 2561)

इसी तरह एक सहाबी ने तक्ररीर करते हुए कहा:

‘जो शख्स अल्लाह और उसके रसूल ﷺ की इताअत करे, वह राह-ए-रास्त पर है और जो इन दोनों की इताअत न करे वह भटका हुआ है’। आपने यह सुन कर फ़रमाया:

‘तू क़ौम के बुरे ख़तीब हो’। (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 870)

इस से मालूम हुआ कि ‘निद्’ से मुराद सिर्फ़ मखसूस नाम नहीं है बल्कि इस में हर वह अमल और फ़िक्र शामिल है जिससे ज़रा सा भी अल्लाह की बराबरी का शक पैदा होता हो। हत्ता कि मज़कूरा अहादीस के मुताबिक़, इस मामले में ख़ुद पैग़म्बर का भी कोई इस्तिस्ना (exception) नहीं।

रसूलुल्लाह ﷺ हर एतबार से उस्वा हैं। मज़कूरा रिवायात से इस मामले में आपका उस्वा मालूम होता है। इस मामले में एक मोमिन को इतना शदीद होना चाहिए कि वह अल्लाह और बंदे, हत्ता कि अल्लाह और रसूल ﷺ के दरमियान साझेदारी को भी ग़वारा न करे। अल्लाह-तआला को यह बात इतनी ज़्यादा नापसंद है कि इसी पर आदमी की जन्नत और जहन्नम का फ़ैसला होने वाला है। चुनाँचे एक हदीस में यह अल्फ़ाज़ आए हैं:

जो शख्स किसी को अल्लाह का हमसर बनाए, अल्लाह उस को आग में डाल देगा। (मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 3811)

हक़ीक़त यह है कि अल्लाह से हुब्ब-ए-शदीद ईमान का आला तरीन दर्जा है। लेकिन अल्लाह से हुब्ब-ए-शदीद की तौफ़ीक़ सिर्फ़ उस

इंसान को मिलती है, जो इस शऊर में जीने वाला हो कि कुव्वत और इख्तियार तमाम-तर सिर्फ़ एक अल्लाह के लिए है, अल्लाह के सिवा जो मख़्लूक़ात हैं, उनके पास इज्ज के सिवा और कुछ नहीं, ख्वाह वह कोई आम इंसान हो या अल्लाह का पैग़म्बर।

रसूल को मानना



उहुद की जंग में जब एक ग़लती से मुसलमानों को शिकस्त हुई तो लोग इधर-उधर बिखर गए। ताहम रसूलुल्लाह ﷺ इतिहाई अज़म व तवक्कुल के साथ अपनी जगह क़ायम रहे। आपके साथ पंद्रह अफ़राद भी तीरों और तलवारों की बारिश में जमे रहे। उस वक़्त एक मुशरिक अब्दुल्लाह बिन क्रमिया ने आप पर पत्थर से हमला किया। यह देख कर आपके साथियों में से हज़रत मुसअब बिन उमैर उसकी तरफ़ बढ़े। दोनों में जंग हुई। अब्दुल्लाह बिन क्रमिया ने हज़रत मुसअब बिन उमैर को क़त्ल कर दिया। उसने समझा कि यह ख़ुद रसूलुल्लाह ﷺ थे, और उसने आपको अपनी तलवार से हलाक कर दिया है। चुनाँचे वह यह कहने लगा: 'मैंने मुहम्मद को क़त्ल कर दिया'। यह ख़बर फैली तो मुसलमानों में से जो लोग इधर-उधर बिखर गए थे, वह भी इस से मुतास्सिर हुए। (सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 2, सफ़हा 73-78)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास की एक तवील रिवायत है। इसमें यह अल्फ़ाज़ आए हैं कुछ अहल-ए-निफ़ाक़ ने कहा कि अगर मुहम्मद क़त्ल कर दिए गए हैं तो अब पिछले दीन में शामिल हो जाओ। इस मौक़े पर सच्चे अहल-ए-ईमान ने साबित-क़दमी का सुबूत दिया। मसलन हज़रत अनस बिन नज़र ने कहा:

يَا قَوْمِ إِنْ كَانَ مُحَمَّدٌ قَدْ قُتِلَ، فَإِنَّ رَبَّ مُحَمَّدٍ لَمْ يُقْتَلْ

यानी, ऐ लोगो, अगर मुहम्मद क़त्ल कर दिए गए हैं तो मुहम्मद का रब तो क़त्ल नहीं हुआ। (तारीख अत-तबरी, जिल्द 2, सफ़हा 520)

हज़रत साबित बिन दहदाहा ने कहा:

إِنْ كَانَ مُحَمَّدٌ قَدْ قُتِلَ فَإِنَّ اللَّهَ حَيٌّ لَا يَمُوتُ!
فَقَاتِلُوا عَنْ دِينِكُمْ، فَإِنَّ اللَّهَ مُظْهِرُكُمْ وَنَاصِرُكُمْ

यानी, अगर मुहम्मद क़त्ल कर दिए गए तो अल्लाह, बेशक ज़िंदा है, तुम अपने दीन के लिए क़िताल करो, अल्लाह तुम लोगों का है (मगाज़ी अल-वाकिदी, जिल्द 1, सफ़हा 281)

एक रिवायत के मुताबिक़ एक अंसारी ने कहा:

إِنْ كَانَ مُحَمَّدٌ قَدْ قُتِلَ فَقَدْ بَلَغَ، فَقَاتِلُوا عَنْ دِينِكُمْ

अगर मुहम्मद क़त्ल कर दिए गए हैं तो वह अपना दीन पहुँचा चुके तो अब तुम इस दीन के लिए लड़ो।

इस पस-ए-मंज़र में क़ुरआन की यह आयत उतरी

وَمَا مُحَمَّدٌ إِلَّا رَسُولٌ قَدْ خَلَتْ مِنْ قَبْلِهِ الرُّسُلُ أَفَإِنْ
مَاتَ أَوْ قُتِلَ انْقَلَبْتُمْ عَلَى أَعْقَابِكُمْ وَمَنْ يَنْقَلِبْ عَلَى
عَقْبَيْهِ فَلَنْ يَضُرَّ اللَّهَ شَيْئاً وَسَيَجْزِي اللَّهُ الشَّاكِرِينَ

यानी, मुहम्मद तो सिर्फ़ एक रसूल हैं। उनसे पहले बहुत से रसूल गुज़र चुके हैं। फिर क्या अगर वह मर जाएँ या क़त्ल कर दिए जाएँ तो तुम उल्टे पाँव फिर जाओगे। और जो शरूख़ उल्टे पाँव फिर जाए तो वह हरगिज़ अल्लाह का कुछ नहीं बिगाड़ेगा, और अल्लाह शुक्र-गुजारों को बदला अता फ़रमाएगा। (3:144)

(दलाइल अन-नुबुव्वह, अल-बैहकी, जिल्द 2, सफ़हा 249)

कुछ लोग वह हैं जो रसूलुल्लाह ﷺ को इस हैसियत से पहचानते हैं कि उन्होंने दुनिया को फ़तह किया। कुछ लोग वह हैं जो आपको

इस हैसियत से पहचानते हैं कि आपने लोगों को अल्लाह की तरफ बुलाया। हक़ीक़ी मोमिन वह है जो रसूलुल्लाह ﷺ को शाहिद, मुबशिशर और नज़ीर की सूरत में पहचाने। जो लोग आपको फ़ातेह की सूरत में पहचानें उनकी पहचान सिर्फ़ इतिहासकार की पहचान है, न कि मोमिन की पहचान।



फ़ुक़दान-ए-मारिफ़त का दौर



एक लंबी रिवायत हदीस की मुख्तलिफ़ किताबों में आई है, जिसमें बाद के ज़माने की पेशीनगोई की गई है। उसका एक जुज़ यह है:

وَيَقَالُ لِلرَّجُلِ مَا أَعْقَلُهُ وَمَا أَظْرَفُهُ وَمَا أَجْلَدُهُ،
وَمَا فِي قَلْبِهِ مِثْقَالُ حَبَّةٍ خَرْدَلٍ مِنْ إِيْمَانٍ

यानी किसी शख्स के मुताल्लिक कहा जाएगा कि कितना अक्लमंद है, कितना बुलंद हौसला है और कितना बहादुर है। हालाँकि उसके दिल में राई बराबर भी ईमान नहीं होगा। (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6497; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 143)



रसूल की इताअत



रसूलुल्लाह ﷺ के ज़माने का एक सबक़-आमोज़ वाक़िया इस्लामी तारीख़ की किताबों में इन अल्फ़ाज़ में ज़िक़र किया गया है। हज़रत अबू क़तादा बयान करते हैं:

بعث رسول الله جيش الأمراء، فقال: عَلَيْكُمْ زَيْدُ بْنُ حَارِثَةَ، فَإِنْ أَصِيبَ فَجَعْفَرُ بْنُ أَبِي طَالِبٍ، فَإِنْ أَصِيبَ جَعْفَرُ فَعَبْدُ اللَّهِ بْنُ رَوَاحَةَ، فَوُتِبَ جَعْفَرُ فَقَالَ: يَا رَسُولَ اللَّهِ، مَا كُنْتُ أَذْهَبُ أَنْ تَسْتَعْمَلَ زَيْدًا عَلَيَّ! قَالَ: امْضُ، فَإِنَّكَ لَا تَدْرِي أَيُّ ذَلِكَ خَيْرٌ! فَأَنْطَلَقُوا

यानी, रसूलुल्लाह ﷺ ने मूता के लिए लश्कर भेजा। उनको आपने हिदायत देते हुए कहा कि ज़ैद बिन हारिसा तुम्हारे सरदार हैं, वह शहीद हो जाएँ तो जाफ़र बिन अबी तालिब सरदार होंगे। और अगर जाफ़र शहीद हो जाएँ तो अब्दुल्लाह बिन रवाहा सरदार होंगे। यह सुन कर जाफ़र झपट कर उठे और कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल ﷺ, मैं ऐसे लश्कर में नहीं जाऊँगा जिस में आपने ज़ैद को मेरे ऊपर सरदार बनाया हो। आपने फ़रमाया कि जाओ, क्यों कि तुम नहीं जानते कि इन में से कौन सी बात तुम्हारे लिए बेहतर है। फिर वह लोग ख़ाना हो गए। (तारीख़ अत-तबरी, जिल्द 3, सफ़हा 40)।

मोमिन फ़रिश्ता नहीं होता। मोमिन भी दूसरे इंसानों की तरह एक इंसान होता है। इस के बावजूद मोमिन और ग़ैर-मोमिन इंसान में बहुत बड़ा फ़र्क़ है। वह फ़र्क़ यह है कि ग़ैर-मोमिन के दिल में कोई ग़लत ख़याल या इंहिराफ़ की बात आ जाए तो उसके बाद वह रुकना नहीं जानता। वह अपने उसी ख़याल पर चल पड़ता है, ख़्वाह उसकी ग़लती उस पर कितनी ही ज़्यादा वाज़ेह की जाए। वह दलील की पैरवी नहीं करता, बल्कि अपनी ख़्वाहिश की पैरवी करता है।

इसके बरअक्स, सच्चे मोमिन का हाल यह होता है कि जब उसको उसकी ग़लती पर टोका जाए, या उसे समझाया जाता है कि वह ग़लत रास्ते पर जा रहा है तो वह फ़ौरन रुक जाता है। वह अपने ख़याल को अपना अमल नहीं बनाता। वह अपनी राय पर इसरार नहीं करता। वह हर वक़्त अपनी इस्लाह के लिए तैयार रहता है, ख़्वाह इस्लाह की

खातिर उसको अपनी ख्वाहिश के खिलाफ चलना पड़े— मोमिन हक़ का पाबंद होता है और ग़ैर-मोमिन सिर्फ़ अपनी ख्वाहिश का पाबंद।

क्रौमी बेइज़्जती या मुहब्बत-ए-रसूल



मौलाना महमूद हसन देवबंदी (d.1920) दारुल उलूम देवबंद में शैखुल हदीस थे। एक बार जब वह सहीह बुखारी का दर्स दे रहे थे, एक हदीस की तशरीह के दौरान उन्होंने इस बात का जिक्र किया कि मुसलमान रसूल की बे-हुरमती के नाम पर सख्त गुस्सा हो जाते हैं। इसका सबब बताते हुए उन्होंने कहा कि रसूल की बे-हुरमती या तौहीन, जो मुसलमानों के लिए ना-क्राबिल-ए-बर्दाश्त बन जाती है, उसकी वजह रसूल की मुहब्बत तो नहीं हो सकती। दरहक़ीक़त, रसूल की तौहीन में अपनी तौहीन का ग़ैर-शऊरी एहसास पोशीदा होता है। मुसलमानों के स्वाभिमान और आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है कि हम जिसको अपना पैग़म्बर और रसूल मानते हैं, तुम उसकी तौहीन नहीं कर सकते। चोट दरहक़ीक़त अपनी इसी “हम” पर पड़ती है, लेकिन मुग़ालता यह होता है कि रसूलुल्लाह ﷺ की मुहब्बत ने इंतिक़ाम पर आमादा किया है। नफ़्स का यह धोखा है। (अहाता दारुल उलूम में बीते हुए दिन, अज़ मौलाना मनाज़िर अहसन गीलानी, सफ़हा 153–155)

अस्ल यह है कि मुसलमानों ने शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर रसूल को अपना क्रौमी फ़र्र बना रखा है। इसलिए जब कोई शाख्स कोई ऐसी बात कहे, जो मुसलमानों के नज़दीक रसूल की तौहीन के हम-मानी हो, तो वह उसको अपनी क्रौमी बेइज़्जती समझ लेते हैं। ऐसे किसी वाक़िए पर मुसलमानों के क्रौमी फ़र्र के ज़ब्बात भड़क उठते हैं और वह हंगामे करने लगते हैं। मगर इस क्रिस्म के रद्द-ए-अमल (reaction) का ताल्लुक़ न इस्लाम से है, न अक़ल से। इस्लाम से इसका नाता इसलिए

नहीं है क्योंकि इस्लाम यह सिखाता है कि लोग दूसरों के सामने दीन का सही तारुफ़ रखें। यानी अगर कोई मनफ़ी (negative) बात भी बोले, तो भी उसे ऐसा इंसान समझना चाहिए जो सच्चाई को नहीं जानता।

चुनाँचे, यह हमारी ज़िम्मेदारी बनती है कि ऐसे इंसान को दुश्मन समझने के बजाय उसके सामने दीन-ए-हक़ का पैग़ाम पुर-अमन अंदाज़ में रखा जाए। और इस क़िस्म का रद्द-ए-अमल अक़ल पर मबनी इसलिए नहीं है कि किसी शाख़्स के मनफ़ी कलाम का ताल्लुक़ आदमी की फ़ितरी आज़ादी से है, जो कि खुदाई मंसूबा-ए-तख़लीक़ के तहत उसको अल्लाह की तरफ़ से मिली हुई है। चूँकि मुसलमान इस मंसूबा-ए-तख़लीक़ को रद्द नहीं कर सकते, इसलिए तौहीन जैसे वाक़िआत का ख़ातिमा भी उनके लिए मुमकिन नहीं। इस तरह के मामले में मुसलमानों के लिए करने का काम सिर्फ़ यह है कि वह गुस्सा और नफ़रत में मुब्तला न हों, बल्कि ऐसे लोगों के हक़ में हिदायत की दुआ करें और पुर-अमन अंदाज़ में हिकमत और ख़ैरख्वाही के साथ उनको अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाएँ।

एकतरफ़ा सोच



रसूलुल्लाह ﷺ की एक हदीस इन अल्फ़ाज़ में आई है। हज़रत अबूदर्दा रिवायत करते हैं, रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया:

حُبُّكَ الشَّيْءُ يُغْمِي وَيُصِمُّ

यानी किसी चीज़ की मुहब्बत तुमको अंधा और बहरा बना देती है। (मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 21694)

इस हदीस में हुब्ब से मुराद सादा तौर पर सिर्फ़ मुहब्बत नहीं है, बल्कि इससे मुराद गुलू-आमेज़ मुहब्बत है। इस हदीस में हुब्ब के जिस ग़ैर-मतलूब नतीजे का ज़िक्र है, उसका ताल्लुक हद से ज़्यादा मुहब्बत से है, न कि सिर्फ़ मुहब्बत से। हद से ज़्यादा मुहब्बत आदमी के अंदर जो ग़ैर-मतलूब सिफ़त पैदा करती है, वही चीज़ है, जिसको एकतरफ़ा सोच (biased thinking) कहा जाता है। यही एकतरफ़ा सोच है, जो आदमी को किसी चीज़ के बारे में अंधा और बहरा बना देती है। मसलन, मौजूदा ज़माने में क्रौम-परस्ती इसका एक ज़ाहिरा है। लोगों का हाल यह है कि जब अपनी कम्यूनिटी और दूसरी कम्यूनिटी का कोई मामला पेश आ जाए, तो वह अपनी कम्यूनिटी की ग़लती समझ नहीं पाते। उनका ज़ेहन यह बन जाता है कि मैं हर हाल में अपनी कम्यूनिटी के साथ हूँ, ख़्वाह वह सही हो या ग़लत (my community, right or wrong)।

इस एकतरफ़ा तर्ज़-ए-फ़िक्र के ब-यक-वक़्त दो नुक़सान हैं। एक यह कि ख़ुद आदमी के अंदर अबदी तौर पर मनफ़ी सोच (negative thinking) पैदा हो जाती है। वह इस सलाहियत से महरूम हो जाता है कि वह चीज़ों को ग़ैर-जानिबदाराना अंदाज़ (impartial way) में देख सके। दूसरा नुक़सान यह है कि वह ख़ुद अपनी कौम के लिए एक बुरा लीडर साबित होता है। इख़्तिलाफ़ी मामलों में वह अपनी कम्यूनिटी को सही रहनुमाई नहीं दे पाता।

एकतरफ़ा तर्ज़-ए-फ़िक्र हर हाल में एक तबाह-कुन तर्ज़-ए-फ़िक्र है। ऐसा आदमी इससे महरूम हो जाता है कि वह दुनिया में उस सालेह फ़िक्री ग़िज़ा को ले सके, जो उसके ख़ालिक ने उसके लिए मुहैया कर रखा है और जिसको क़ुरआन में रिज़्क-ए-रब कहा गया है। रिज़्क-ए-रब का हुसूल इस दुनिया में रब्बानी शख्सियत की तामीर के लिए ज़रूरी है, लेकिन अपने अंदर रब्बानी शख्सियत की तामीर की सआदत सिर्फ़ उस शख्स को मिलती है, जिसके अंदर मुस्बत सोच पाई जाए।



इंसान का मक़सद-ए-तख़लीक़



इंसान की पैदाइश और ज़मीन पर उसकी ज़िंदगी एक बहुत बड़ा चमत्कार है। इंसान माँ के पेट में अपनी ज़िंदगी की इब्तिदा करता है। माँ का पेट एक इतिहाई मुकम्मल क्रिस्म का कारखाना है, जिसमें इंसान ब-तदरीज एक बच्चे की सूरत में वजूद पाता है। फिर एक मुक़रर मुदत के बाद वह माँ के पेट से निकलकर ज़मीन पर आबाद होता है। यहाँ इंसान के लिए पहले से एक मुवाफ़िक़ दुनिया, दूसरे अल्फ़ाज़ में कस्टम मेड यूनिवर्स (custom made universe) मौजूद होती है। इस दुनिया में आला इंतज़ाम के तहत इंसान का डेवलपमेंट होता है। यहाँ तक कि एक मुक़रर मुदत के बाद इंसान पर मौत का तजुर्बा पेश आता है, जिसको कुरआन में इस तरह बयान किया गया है: हर शख्स को मौत का मज़ा चखना है। (3:185)

इंसान की इस तख़लीक़ का मक़सद क्या है? तख़लीक़ी प्लान के मुताबिक़, ख़ालिक़ को इंसान से क्या मतलूब है? इसका जवाब कुरआन के मुताले से मालूम होता है। कुरआन में मुताल्लिक़ आयात के अल्फ़ाज़ यह हैं:

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنْسَ إِلَّا لِيَعْبُدُونِ - مَا أُرِيدُ مِنْهُمْ مِنْ رِزْقٍ
وَمَا أُرِيدُ أَنْ يُطْعَمُوا - إِنَّ اللَّهَ هُوَ الرَّزَّاقُ ذُو الْقُوَّةِ الْمَتِينُ

यानी, और मैंने जिन और इंसान को सिर्फ़ इसलिए पैदा किया है कि वह मेरी इबादत करें। मैं उनसे रिज़क़ नहीं चाहता और न यह चाहता हूँ कि वह मुझको खिलाएँ। बेशक़ अल्लाह ही रोज़ी देने वाला, ज़ोर-आवर, ज़बरदस्त है। (51:56-58)

इन आयात के मुताले से मालूम होता है कि इंसान की तख़लीक़ यक-तरफ़ा प्लानिंग के तहत हुई है। यहाँ खुदा ख़ालिक़ है और इंसान का दर्जा

मख्लूक का। तख्लीक का यह मामला खुदा की यक-तरफा रज्जाक्रियत का मामला है। इंसान के मक़सद-ए-तख्लीक को समझने के लिए सबसे ज्यादा ग़ौर-तलब लफ़्ज़ है: लियअबुदूनि (ताकि वे मेरी इबादत करें), जिसकी तफ़्सीर लियअरिफ़ूनि (ताकि वे मुझे पहचानें, मेरी मारिफ़त हासिल करें) से की गई है (तफ़्सीर मुक़ातिल बिन सुलेमान, जिल्द 4, सफ़्हा 133)।

यह तफ़्सीर अस्लन अब्दुल्लाह इब्न अब्बास सहाबी की है (अल-मुजालसह व जवाहिर अल-इल्म लिद्दीनूरी, असर नंबर 225)। उसके बाद उनके शागिर्द मुजाहिद बिन ज़ब्र ताबई ने इसको नक़ल किया है (तफ़्सीर अल-बग़ावी, जिल्द 4, सफ़्हा 288)। इस एतबार से आयत की यह तफ़्सीर एक मोतबर तफ़्सीर की हैसियत रखती है।

इस तफ़्सीर के मुताबिक़ ग़ौर किया जाए, तो यह कहना सही होगा कि इंसान की तख्लीक का मक़सद अस्लन यह है कि वह अपने रब की मारिफ़त हासिल करे। काइनात में सब कुछ था, लेकिन खुद-शऊरी का ज़ाहिरा (phenomena) मौजूद न था। ख़ालिक़ ने चाहा कि यहाँ एक ऐसी मख्लूक पैदा हो, जो शऊर की सलाहियत रखने वाली हो। इंसान की साख़्त इस तफ़्सीर की ताईद करती है, क्योंकि इंसान को जिन सलाहियतों के साथ पैदा किया गया है, वह इस तफ़्सीर के साथ पूरी तरह मुताबक़त रखता है।

इंसान की शख़्सियत का मुताला करने से ऐसा मालूम होता है कि इंसान का मॉडल इसी मक़सद के मुताबिक़ बनाया गया है। इंसान गोया इस बात की पूरी सलाहियत रखता है कि वह अपने ख़ालिक़ को दरियाफ़्त करे। ख़ालिक़ की दरियाफ़्त के सिवा इंसान का कोई और मक़सद-ए-वजूद नहीं।

क़ुरआन की इस आयत पर मज़ीद ग़ौर करने से मालूम होता है कि ग़ालिबन अल्लाह रब्बुल आलमीन को यह मतलूब था कि काइनात में एक ऐसी मख्लूक हो, जो सेल्फ़ डिस्कवरी (self discovery)

की सतह पर अपने खालिक को दरियाफ्त करे, और फिर इस खुद-दरियाफ्त-करदा मारिफ्त की सतह पर वह खड़ी हो। यानी एक ऐसी मख्लूक, जो अपनी ज़ाती दरियाफ्त की बुनियाद पर यह एलान करे कि, “खुदाया, तू खालिक है, मैं मख्लूक हूँ; तू देने वाला (giver) है और मैं पाने वाला (taker) हूँ; तू वाजिद (Originator) है और मैं मौजूद (created being) हूँ।”

खालिक की यह मंशा थी कि एक ऐसी मख्लूक हो, जो इस सबसे बड़ी हक़ीक़त को अपनी समझ और खोज के ज़रिए पहचाने। दूसरे लफ़्ज़ों में, एक ऐसी मख्लूक, जो क़ादिर-ए-मुतलक़ खुदा के सामने अपने मुकम्मल आज़िज़ होने को दरियाफ्त करे। यही इंसान की पैदाइश का असली मक़सद है। यही इंसान की तरक्की की सबसे ऊँची मंज़िल है। जो लोग अपनी समझ और शऊर को इतना विकसित कर लेते हैं और इस दर्याफ्त के मुताबिक़ दुनिया में ज़िंदगी गुज़ारते हैं, वही लोग जन्नत में बसाए जाने के लिए चुने जाएँगे, जहाँ वे हमेशा रहेंगे। इस तरह खुदा को गहराई से पहचानने वाली मख्लूक का नाम इंसान है, और दरियाफ्त-ए-ख़वेश के इस दर्जे तक पहुँचने का नाम मारिफ़्त है।

शैतान का मुक़ाबला



क़ुरआन में आदम और इब्लीस का क्रिस्सा कुछ तफ़्सील के साथ बताया गया है। उसके मुताबिक़, यह हुआ कि शैतान आज़ाज़ ही में इंसान का दुश्मन बन गया। उसने एलान किया कि मैं इंसान को बहकाऊँगा और उसको जन्नत के रास्ते से दूर कर दूँगा। अल्लाह-तआला ने शैतान को आज़ादी दे दी, लेकिन इसी के साथ यह फ़रमाया:

إِنَّ عِبَادِي لَيْسَ لَكَ عَلَيْهِمْ سُلْطَانٌ

यानी, जो मेरे बंदे हैं, उन पर तेरा कोई ज़ोर नहीं चलेगा। (15:42)

कुरआन की इस आयत में सुलतान का मतलब क्या है? इस सिलसिले में मुफ़स्सिर की राय का खुलासा इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है:

إِنَّ عِبَادِي الْمُؤْمِنِينَ لَا قُوَّةَ عَلَيْهِمْ فِي إِضْلَالِهِمْ

यानी, तुमको यह कुदरत हासिल नहीं होगी कि तुम मेरे मोमिन बंदों को गुमराह कर सको। (सफ़वतुत-तफ़ासीर लिस्साबूनी, जिल्द 2, सफ़हा 101)

यहाँ यह सवाल है कि मोमिन बंदे किस तरह शैतान के वसवसे और तज़ईन से महफूज़ रहेंगे। यह कोई पुर-असरार मामला नहीं। इसका ताल्लुक दरअसल अहल-ए-ईमान की ज़ेहनी बेदारी से है। इसी ज़ेहनी बेदारी (intellectual awakening) का नतीजा होता है कि वह शैतान के वसवसे और तज़ईन को फ़ौरन पहचान लेता है और उसको डीफ़्यूज़ करके बे-असर बना देता है। कुरआन में है कि जो लोग तक्रवा वाले हैं, जब कभी शैतान के असर से कोई बुरा खयाल उन्हें छू जाता है, तो वह फ़ौरन चौंक पड़ते हैं और फिर उसी वक़्त उनको सूझ आ जाती है। (7:201)

डीफ़्यूज़ (defuse) का लफ़ज़ इस मामले को अच्छी तरह वाज़ेह करता है। मौजूदा ज़माने में जो बम बनाए जाते हैं, उनके अंदर धमाका-खेज़ माद्दे के अलावा एक बारीक तार लगा होता है, जिसको फ़्यूज़ (fuse) कहते हैं। इस फ़्यूज़ में आग लगने से बम में धमाका होता है। पुलिस जब किसी बम को नाकारा बनाना चाहती है, तो वह मख़्सूस टेक्नीक के ज़रिये उसके फ़्यूज़ को निकाल देती है। उसके बाद बम नाकारा हो जाता है और फटने के काबिल नहीं रहता। इस अमल को डीफ़्यूज़ करना कहा जाता है। इस अमल को मोमिन फ़िक्री एतबार से

करता है। वह फ़िक्री सतह पर शैतान के बम को डीप्रूज कर देता है। इस तरह वह शैतान के वसवसे और तज़ईन से महफूज़ रहता है।

तज़ईन क्या है



इब्लीस, इंसान का दुश्मन है। कुरआन में बताया गया है कि इब्लीस ने आगाज़-ए-इंसानियत में यह चैलेंज दिया था कि वह इंसानी नस्ल की अक़सरियत को गुमराही में डाल देगा। उसने कहा था:

قَالَ أَرَأَيْتَكَ هَذَا الَّذِي كَرَّمْتُ عَلَيْ لِيْنُ أَخْرَجْتِنِ
إِلَى يَوْمِ الْقِيَامَةِ لَأُخْتَنِكَنَّ ذُرِّيَّتَهُ إِلَّا قَلِيلًا

यानी, उसने कहा, “ज़रा देख, यह शख्स, जिसको तूने मुझ पर इज़्ज़त दी है। अगर तू मुझको क्रियामत के दिन तक मोहलत दे, तो मैं थोड़े लोगों के सिवा उसकी तमाम औलाद को खा जाऊँगा।” (17:62)

इब्लीस को यह इख़्तियार नहीं कि वह इंसान के खिलाफ़ कोई ज़ारिहाना (aggressive) कार्रवाई करे। इब्लीस के बस में सिर्फ़ एक चीज़ है, और वह है इंसान के ज़ेहन में वसवसा डालना, इंसान को फ़िक्री एतबार से बहकाना। इस मामले में शैतान का तरीक़ा क्या है? कुरआन के मुताबिक़, वह वसवसा (अल-आराफ़, 7:20) और तज़ईन (beautify) (अल-हिज़्र, 15:39) का तरीक़ा है। यानी इंसान के खिलाफ़ इब्लीस की कार्यवाइयाँ हमेशा ज़ेहनी सतह पर होती हैं, न कि जिस्मानी सतह पर। इसलिए इब्लीस के फ़ित्नों से बचने के लिए इंसान को ज़ेहनी हिफ़ाज़त की ज़रूरत है, न कि जिस्मानी हिफ़ाज़त की।

इब्लीस का वसवसा और तज़ईन कोई एक-तरफ़ा मामला नहीं,

बल्कि वह अपनी हक्रीकत के एतबार से दो-तरफ़ा (bilateral) मामला है। इब्लीस अपने वसवसे और तज़ईन में इसलिए कामयाब होता है कि वह इंसान के अंदर एक कमज़ोरी तलाश करता है। इस कमज़ोरी को तलाश करके वह इंसान को ब-ज़रिये वसवसा और तज़ईन गुमराही में डाल देता है। कहा जाता है कि वक़ील क़ानून में कमज़ोरी (loophole) तलाश करके उसको इस्तेमाल करता है।

Lawyers always exploit the legal loopholes.

यही तरीक़ा इब्लीस का है। इब्लीस चाहता है कि वह इंसान की सोच और ज़ब्बात में एक लूपहोल तलाश करे और फिर इस लूपहोल को इस्तेमाल करके वह इंसान को सही रास्ते से भटका दे।

Satan always exploits the loopholes of human sentiments.

मिसाल के तौर पर, इब्लीस ने आदम को बहकाने के लिए जो तरीक़ा इख़्तियार किया था, उसका ज़िक्र क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में किया गया है:

فَوَسْوَسَ إِلَيْهِ الشَّيْطَانُ قَالَ يَا آدَمُ هَلْ أَدُلُّكَ عَلَى شَجَرَةِ الْخُلْدِ وَمُلْكٍ لَّا يَبُلَىٰ

यानी, फिर शैतान ने उनको बहकाया। उसने कहा कि, “ऐ आदम, क्या मैं तुमको हमेशागी का दरख़्त बताऊँ, और ऐसी बादशाही, जिसमें कभी कमज़ोरी न आए।” (20:120)

इससे मालूम होता है कि इब्लीस ने आदम के अंदर मौजूद हमेशा ज़िंदा रहने की ख़्वाहिश को इस्तेमाल करके उनको बहकाया था। यहाँ ज़ाहिर है कि वसवसा एक ग़ैर-महसूस चीज़ है। वसवसे को छूकर या देखकर नहीं जाना जा सकता। वसवसे के शर से बचने के लिए

ज़रूरी है कि आदमी अपनी अक़ल को इस्तेमाल करके वसवसे को दरियाफ़्त करे। इसका मतलब यह है कि इंसान अपने ज़ेहन को बेदार रखे। इसके बाद वह इस काबिल हो जाएगा कि वह शैतान के वसवसे का तज्जिया करे और इस तरह उससे मुतास्सिर न हो। ऐसे आदमी की ज़ेहनी बेदारी उसको ऐसे मौक़ों पर इब्लीस से महफ़ूज़ रखने की ज़ामिन बन जाएगी।

फ़ितरत का अमल



एक साहब से मुलाक़ात हुई। उन्होंने कहा कि उसने अपनी फैमिली के लिए कुछ नहीं किया। मैंने कहा कि कुछ न करना सबसे बड़ा करना है। इसलिए कि जब आप कुछ नहीं करते हैं तो फ़ितरत का निज़ाम अपना काम शुरू कर देता है ॥ और फ़ितरत का निज़ाम उस से ज़्यादा कर देता है जितना आप करते। ज़िंदगी में सबसे बड़ा आमिल (incentive) आप खुद नहीं, सबसे बड़ा आमिल फ़ितरत है।

बुढ़ापे का सबक़



कुरआन की मुख्तलिफ़ आयतों में बुढ़ापे की उम्र का ज़िक्र आया है। उन में से एक आयत यह है:

أَوَلَمْ نَعَمِّرْكُمْ مَا يَتَذَكَّرُ فِيهِ مَنْ تَذَكَّرَ وَجَاءَكُمْ النَّذِيرُ

यानी, क्या हमने तुमको इतनी उम्र न दी कि जिसको समझना हो, वह समझ ले। और तुम्हारे पास होशियार करने वाला आया। (35:37)

गौर करने से मालूम होता है कि बुढ़ापे की उम्र गोया एक क्रिस्म का फ़ितरी ज़ब्र (compulsion) है। इंसान पैदा होने के बाद पहले ताक़त का तज़ुर्बा करता है। इसके बाद उस पर बुढ़ापे का दौर आता है। अब वह मजबूर होता है कि अपने ज़ाती तज़ुर्बे के ज़रिये यह दरियाफ़्त करे कि इंसान के ऊपर एक और ताक़त है, जो पहले जवानी की उम्र अता करती है, उसके बाद उसको बुढ़ापे की उम्र में मुब्तला कर देती है।

यह फ़ितरी इशारा है कि इंसान अपनी हक़ीक़त को जाने और 'मैन कट टू साइज़' (man cut to size) बनकर ज़िंदगी गुज़ारे। वह इस बात को समझे कि वह इस दुनिया का ख़ालिक नहीं है, बल्कि एक पैदा करने वाले ने उसको एक मंसूबे के तहत पैदा किया है। वह मंसूबा यह है कि इंसान अपनी हक़ीक़त-ए-वाक़िआ को दरियाफ़्त करे।

एक इंसान जब अपनी हक़ीक़त-ए-वाक़िआ को दरियाफ़्त कर लेता है, तो वह मुतवाज़े (modest) इंसान बन जाता है। मुतवाज़े इंसान को एक हदीस-ए-रसूल में अब्द-ए-शकूर कहा गया है। हदीस के अल्फ़ाज़ यह हैं:

سَمِعْتُ الْمُغِيرَةَ رَضِيَ اللَّهُ عَنْهُ، يَقُولُ: إِنْ كَانَ النَّبِيُّ صَلَّى اللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ لَيَقُومُ لِيُصَلِّيَ حَتَّى تَرُمَ قَدَمَاهُ - أَوْ سَاقَاهُ - فَيُقَالُ لَهُ فَيَقُولُ: أَفَلَا أَكُونُ عَبْدًا شَكُورًا

यानी, हज़रत मुगीरा से रिवायत है कि रसूल अल्लाह ﷺ नमाज़ के लिए खड़े होते, यहाँ तक कि आपके दोनों क़दमों या पिंडलियों में वरम (swelling) आ जाता। आपसे कहा गया, “आप ऐसा क्यों करते हैं?” तो आपने जवाब दिया, “क्या मैं शुक्र-गुज़ार बंदा न बनूँ?”

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1130)



कन्फ्यूजन क्यों?



आप लोगों से बात करें, तो आप पाएँगे कि कोई आदमी वुजूह (clarity) के साथ बात नहीं कर रहा है। हर एक की बात में कन्फ्यूजन है। ऐसा क्यों है? इसका सबब यह है कि हर आदमी मुख्तलिफ़ क्रिस्मों के इंसानों के दरमियान जीता है। हर आदमी मुख्तलिफ़ अफ़कार के जंगल में साँस लेता है। यह वाक़िआ हर आदमी को कंडीशनिंग का केस बना देता है। इस मामले में आदमी का पहला काम यह है कि वह अपना फ़िक्री तज्जिया करके अपने आपको डी-कंडीशन्ड इंसान बनाए। आदमी जब तक यह काम नहीं करेगा, वह अमलन फ़िक्री वुजूह में जीने वाला नहीं बन सकता।

यह हमारी इज्तिमाई ज़िंदगी का एक लाज़िमी मसला है। हर आदमी की पहली ज़रूरत यह है कि वह चीज़ों को सॉर्ट आउट (sort out) करे। वह चीज़ों को एक-दूसरे से अलग करे। वह सफ़ेद को सियाह से अलग करे और सियाह को सफ़ेद से अलग करके पहचाने। ऐसा ही इंसान डी-कंडीशन्ड इंसान है। ऐसा ही इंसान वह है, जो इस हदीस का मिस्दाक़ बनेगा, जिसमें दुआ की ज़बान में कहा गया है:

اللَّهُمَّ أَرِنَا الْأَشْيَاءَ كَمَا هِيَ

यानी, ऐ अल्लाह, मुझे यह तौफ़ीक़ दे कि मैं चीज़ों को एज़ इट इज़ (as it is) देख सकूँ (तफ़सीर अर-राज़ी, जिल्द 13, सफ़्हा 37)। यानी मुझे यह क़ाबिलियत दे कि मैं बिना किसी कंडीशनिंग और तास्सुब के, चीज़ों के बारे में बिल्कुल सही राय क़ायम कर सकूँ।

मसलन, आजकल के सियासी हालात पर ज़्यादातर लोग मनफ़ी सोच के हामिल बने हुए हैं। मगर मैं, अल्लाह के फ़ज़ल से, इस फ़िक्री बुराई से पाक हूँ। मैंने मामले को गहराई से समझने की कोशिश की, तो

यह हक्रीकत सामने आई कि पिछले कई बरसों से मुसलमानों ने यह मुहिम चलाई थी कि एक ख़ास सियासी पार्टी को शिकस्त दी जाए। इसके नतीजे में उस पार्टी के अंदर एक जवाबी ज़ेहन पैदा हुआ। जब वह पार्टी इक़्तिदार में आई, तो उसने अपने दिफ़ा में यह तर्ज़-ए-अमल इश्तिहार किया कि मुसलमानों को दोबारा ऐसी मुख़ालिफ़ाना तहरीक चलाने का मौक़ा न दिया जाए।

लिहाज़ा, मौजूदा हालात में जो कुछ हो रहा है, वह दरअसल एक जवाबी कार्रवाई है। यह कोई ऐन्टी-मुस्लिम तहरीक नहीं, बल्कि असल में एक रिएक्शन है—जो ख़ुद मुसलमानों की बिना सोचे-समझे अपनाई गई सियासी पॉलिसी का फ़ितरी नतीजा है।



दफ़अ का क़ानून



क़ुरआन की दो आयतों (2:251; 22:40) में दफ़अ का क़ानून बताया गया है। दफ़अ का लफ़ज़ी मतलब है, हटाना। ख़ालिफ़ ने इस दुनिया को आज़ादी के उसूल पर बनाया है। इस बिना पर दुनिया में क़ौमों के दरमियान हमेशा मुक़ाबले का अमल जारी रहता है। इस दौरान एक गिरोह दूसरे गिरोह के ऊपर ग़ालिब आ जाता है। अगर ऐसा न हो और एक गिरोह को मुसलसल तौर पर ग़लबे का मौक़ा मिलता रहे, तो दुनिया में फ़साद पैदा हो जाए। इसलिए ख़ुदा इस मामले को इस तरह मैनेज करता है कि एक गिरोह और दूसरे गिरोह के दरमियान मुक़ाबला पेश आता है। यहाँ तक कि जब कोई गिरोह ज़्यादा फ़साद करने लगता है, तो उसे दूसरा गिरोह हटा देता है, जो उसके मुक़ाबले में कम फ़साद करने वाला होता है। यह अमल अगरचे इर्तिक़ा (evolution) का अमल नहीं है, लेकिन यह इस बात से मिलता-

जुलता है कि जो ज्यादा क्राबिल होता है, वही बचता है (survival of the fittest)।

अस्ल यह है कि इंसान की पैदाइश फ़ितरत के जिस निज़ाम के तहत हुई है, उसके मुताबिक़, इंसान की तरक्क़ी के लिए ज़रूरी है कि वह मुसलसल तौर पर मुतहर्रिक रहे। हरकत से इंसान के अंदर तरक्क़ी होती है, और ठहराव से इंसान के अंदर जुमूद (stagnation) आ जाता है। जब कोई इंसानी गिरोह तरक्क़ी की इतिहा को पहुँच जाए, तो उसके अंदर जुमूद आना शुरू हो जाता है। इस बिना पर खालिक़ ने यह मुक़द्दर कर दिया कि इंसान को हमेशा शॉक लगता रहे। इस बिना पर इंसान के लिए ‘शॉक ट्रीटमेंट’ का तरीक़ा मुक़र्रर किया गया। एक गिरोह की जगह दूसरे गिरोह के आने का उसूल इंसानी समाज के लिए एक तरह का शॉक ट्रीटमेंट है।

यह अमल इस तरह पेश आता है कि कुछ लोग इस्लाह के लिए उठते हैं। वह लोगों को उनकी ग़लतियों से आगाह करते हैं। इसके बाद यह होता है कि सालेह गिरोह बाक़ी रह जाता है, और दूसरा गिरोह, जो ग़ैर-सालेह होता है, उसको क्रियादत व ग़लबा के मैदान से हटा दिया जाता है। यह अमल पूरी इंसानी तारीख़ में जारी रहा है।

इस अमल का पहला मुज़ाहिरा हज़रत नूह के ज़माने में हुआ। हज़रत नूह ने अपने ज़माने के लोगों को अल्लाह के पैग़ाम से आगाह करने का काम किया। कुछ लोगों ने पैग़म्बर नूह की इस्लाह को क़बूल किया, और ज़्यादातर लोग बिगाड़ पर क़ायम रहे। इसके बाद एक बड़ा तूफ़ान (Great Flood) आया। इस तूफ़ान में फ़साद फैलाने वाले लोग ख़त्म हो गए, और जो लोग निस्बतन सालेह और सच्चे थे, उनको हज़रत नूह ने कश्ती पर सवार किया। यह कश्ती इराक़ के इलाक़े से बहती हुई तुर्की की सरहद पर अरारात के इलाक़े में पहुँची। यह जगह तीन बर-ए-आज़मों का संगम थी—एशिया, अफ़्रीका और यूरोप।

हज़रत नूह की कशती यहाँ रुकी। इसके बाद जो लोग तूफ़ान से बच गए थे, वह कशती से निकलकर धीरे-धीरे ज़मीन में फैल गए। आखिरकार यह लोग तीन बर-ए-आज़मों (continents)—एशिया, अफ्रीका और यूरोप—में बस गए। इन लोगों के ज़रिये एक नई नस्ल बनी, जो इन बर-ए-आज़मों में फैली थी। इन लोगों ने इंसानियत की नई तारीख़ बनाई। यह लोग पैग़म्बर नूह के तीन बेटों, हाम, साम और याफ़िस की नस्ल से थे।

लेकिन बाद के ज़माने में इन लोगों में दोबारा बिगाड़ आया। यही वह ज़माना है, जिसके बारे में हज़रत इब्राहीम ने इन अल्फ़ाज़ में इशारा किया था:

رَبِّ إِنَّهُمْ أَضَلَّلْنَ كَثِيرًا مِّنَ النَّاسِ

यानी, ऐ मेरे रब, उन्होंने बहुत लोगों को गुमराह कर दिया। (14:36)

इस आयत को समझने के लिए सहराई ज़िंदगी को सामने रखना चाहिए। सहराई ज़िंदगी में सूरज, चाँद और सितारे बहुत ज़्यादा रोशन नज़र आते हैं। इससे इंसान के अंदर रोशन चाँद-सितारों के बारे में बेइंतिहा अज़मत और हैरत का मिज़ाज (sense of awe) पैदा हुआ, और इंसानों के अंदर वह चीज़ पैदा हुई, जिसको तारीख़ में फ़िरत-परस्ती (nature worship) कहा जाता है। इस दौर से फ़ायदा उठाकर वह ज़ाहिरा पैदा हुआ, जिसको शिर्क कहा जाता है। यहीं से बादशाहत वुजूद में आई। बादशाहों ने फ़ौज बनाकर ब-ज़ोर अपनी हुक़मानी क़ायम कर ली। बादशाह लोग आसमान के रोशन चाँद-सितारों के हवाले से अपने को सबसे बड़ा हाकिम होने का दावा करना शुरू कर दिया।

अपनी इस सबसे बड़ी हाकिमियत को सही ठहराने के लिए बादशाहों ने यह फ़िक्र बनाई कि जो बादशाह का दीन है, वही सबका दीन है। बादशाह का दीन ही हुकूमत से वफ़ादारी का निशान बन गया।

यह तसव्वुर बढ़ते-बढ़ते मजहबी जन्न (religious persecution) की शक्ल में हर जगह क़ायम हो गया। शिर्क को ख़त्म करने के लिए पहले अगर तब्लीग़ का अमल काफ़ी हो सकता था, तो अब उसको ख़त्म करने के लिए उससे लड़ना ज़रूरी हो गया।

तारीख़ का यही वह मोड़ है, जब हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने ख़ुदा के हुक्म से एक नई प्लानिंग शुरू की। उन्होंने अरब के सहारा में एक बेहद मुश्किल अमल शुरू किया, जिसको 'डेजर्ट थेरेपी' कहा जा सकता है। उन्होंने अपने बेटे इस्माईल को बंजर रेगिस्तान में लाकर आबाद कर दिया, जो गोया कि उनको कुर्बान कर देने के हम-मानी था। इस कुर्बानी को क़ुरआन में ज़िबह-ए-अज़ीम (अस-साफ़ात, 37:107) कहा गया है। इस तरह सहारा में एक नई नस्ल बनना शुरू हुई, जो फ़ितरत-परस्ती की बुराई से پاک थी।

यह वही नस्ल थी, जिसमें छठी सदी ईसवी में रसूल और अस्हाब-ए-रसूल पैदा हुए। फिर ऐसा हुआ कि अपने ज़माने की दो अज़ीम सुपर पावरों के साथ उनके टकराव का वाक़िआ पेश आया, जिसमें वह दोनों अज़ीम सलतनतें ख़त्म हो गईं। मगर उनका ख़ातिमा क़ानून-ए-दफ़अ के तहत अंजाम पाया, क्योंकि यह दोनों सुपर पावर अपने ज़माने में मजहबी जन्न (religious persecution) का मरकज़ बने हुए थे। चुनाँचे, उनके ख़ातमे के बाद ख़ुदा ने रसूल और अस्हाब-ए-रसूल के ज़रिये इंसानी तारीख़ में वह इंक़िलाबी प्रोसेस जारी किया, जिसका नतीजा मौजूदा ज़माने का जम्हूरी और साइंसी इंक़िलाब है।

दफ़अ की एक सूरत वह है, जबकि दो फ़रीक़ों में से एक के ज़रिये दूसरे ग़ालिब फ़रीक़ को दुनिया की क्रियादत से हटा दिया जाए। दफ़अ की दूसरी सूरत यह है कि ख़ुद एक ही फ़रीक़ को ब-ज़रिये इस्लाह उसकी बे-राह-रवी से हटाकर सही रास्ते पर लाया जाए।

इस मामले में अस्ल अहमियत यह है कि जब कोई नई सूरत-ए-हाल पेश आए, तो इंसान निष्पक्ष तज्जिया (unbiased analyses) के जरिये उसकी हकीकत को दरियाफ्त करे। इस तरह इस क्रिस्म के मनफ्री (negative) वाकियात उसके लिए मुस्बत (positive) नतीजों का सबब बनेंगे। वह बार-बार अपने अमल की री-प्लानिंग करेगा। उसको अपनी गलतियों से अपने लिए नई दिशा मिलेगी। इस तरह हर गैर-मतलूब तारीख के बाद मतलूब तारीख बनेगी, और इंसान की तारीख अमलन सही रुख पर सफ़र करती रहेगी, और वह बड़े-बड़े नताइज तक पहुँचेगी।

दज्जाल का फ़ितना



हदीस की अक्सर किताबों में आया है कि क्रियामत से पहले एक शख्स ज़ाहिर होगा। उसके लिए हदीस में दज्जाल का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है। इसी के साथ हदीस में यह भी बताया गया है कि ऐसे तीस लोग आएंगे जो ‘दज्जाल कज़़ाब’ (बहुत बड़े झूठे और बहकाने वाले) होंगे। इंग्लिश में दज्जाल को ‘इम्पोस्टर’ (impostor) कह सकते हैं। दज्जाल का लफ़्ज़ अगरचे कुरआन में नहीं आया है, लेकिन मानी के एतिबार से वह कुरआन में मौजूद है। कुरआन में बताया गया है कि शैतान बुराई को अच्छा और दिलकश बनाकर पेश करता है। इस सिलसिले में कुरआन की एक आयत यह है:

قَالَ رَبِّ بِمَا أَغْوَيْتَنِي لَأُزَيِّنَنَّ لَهُمْ فِي الْأَرْضِ وَلَأُغْوِيَنَّهُمْ أَجْمَعِينَ

यानी, इब्लीस ने कहा, “ऐ मेरे रब, जैसा तूने मुझको गुमराह किया है, उसी तरह मैं ज़मीन में उनके लिए मुजय्यन करूँगा और सबको गुमराह कर दूँगा।” (15:39)

He said, “My Lord, since You have let me go astray, I shall make the path of error seem alluring to them on the earth and shall mislead them all.”

इस लिहाज से गालिबन यह कहना सही होगा कि दज्जाल बुराई को अच्छा बनाकर दिखाने वाला सबसे बड़ा फ़रेबी होगा। दज्जाल उम्मत-ए-मुस्लिमह का एक फ़र्द होगा, लेकिन वह उम्मत के बाद के ज़माने में आएगा। गोया कि तारीख़ी तौर पर उस ज़माने में, जबकि उम्मत ज़वाल का शिकार हो चुकी होगी। ज़वाल के ज़माने में किसी उम्मत के अंदर जो नफ़िसयात बनती है, वह पस्त हौसले की नफ़िसयात (defeatist mentality) होती है। यह ज़माना वह होता है, जबकि उम्मत इस क़ाबिल नहीं रहती कि वह अमलन अपनी शिकस्त को फ़तह में तब्दील कर सके। इसलिए उम्मत के अंदर ऐसे अफ़राद उभरते हैं, जो उम्मत को फ़र्ज़ी फ़र्र (false pride) की ग़िज़ा दें, जिनकी लफ़ज़ी बातों से मुतास्सिर होकर उम्मत यह समझे कि वह उसके मुख़ालिफ़ीन के मुक़ाबले में हिमायती (defender) का रोल अदा कर रहे हैं।

ग़ौर करने से मालूम होता है कि उम्मत के दौर-ए-ज़वाल में जो शख्स हिमायती की हैसियत से उभरेगा, वह हक़ीक़त के एतिबार से हिमायती का रोल अदा करने वाला न होगा, बल्कि वह दज़ल (to deceive) के लिबादे में जाहिर होगा। यानी उम्मत धोखा खाकर उसको अपना हिमायती समझ लेगी। हालाँकि वह हिमायती नहीं, बल्कि फ़रेबी (deceiver) होगा।

अहादीस से यह भी मालूम होता है कि उस ज़माने में उम्मत का एक शख्स जाहिर होगा, जो दज्जाल को क़त्ल करेगा (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4321)। ग़ौर करने से समझ में आता है कि यह क़त्ल जिस्मानी क़त्ल न होगा, बल्कि वह नज़रियाती क़त्ल होगा। यानी इस मानी में कि

वह शख्स दलाइल के जरिये एक्सपोज़ (expose) करके बताएगा कि यह शख्स हिमायती नहीं है, बल्कि वह फ़रेबी है।

हदीस में आया है कि दज्जाल एक नहीं होगा, बल्कि बड़े दज्जाल से पहले तीस दज्जाल जाहिर होंगे (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4333)। इसका मतलब ग़ालिबन यह है कि दज्जाल एक इन्फ़िरादी किरदार नहीं होगा, बल्कि वह फ़रेब देने वाले सिलसिले का चरम बिंदु होगा। दज्जाल से पहले मुख्तलिफ़ क्रिस्म के अफ़राद उठेंगे, जो गोया बड़े दज्जाल के लिए इब्तिदाई ज़मीन तैयार करेंगे। मसलन पहले मनाज़िर (debater) क्रिस्म के अफ़राद उभरेंगे। उसके बाद ऐसे अफ़राद उभरेंगे, जिनको मिल्लत अपने दुश्मनों के मुक़ाबले में डिफेंडर का दर्जा देगी। आखिर में बड़ा दज्जाल जाहिर होगा, जिसको लोग अपना नजात दिलाने वाला (saviour) समझेंगे।

बड़े दज्जाल का मतलब यह नहीं है कि वह ज़ाती एतिबार से ग़ैर-मामूली शख्सियत का मालिक होगा। बल्कि उसका मतलब यह है कि उसके ज़माने में ऐसे हालात और वसाइल पैदा होंगे, जो उसको मौक़ा देंगे कि वह अमलन बड़े दज्जाल का दर्जा हासिल कर ले। मसलन यह कि उसके ज़माने में आलमी कम्युनिकेशन वजूद में आ जाएगा। जैसा कि हदीस में आया है:

يُنَادَى بِصَوْتٍ لَهُ يُسْمَعُ بِهِ مَا بَيْنَ الْخَافِقَيْنِ

यानी, दज्जाल एक ऐसी आवाज़ से पुकारेगा, जो मशरिक और मग़रिब के दोनों सिरों के दरमियान सुनाई देगी। (कंज़ुल उम्माल, हदीस नंबर 39709)

मज़ीद ग़ौर करने से मालूम होता है कि दज्जाल का मतलब यह नहीं है कि वह आम इंसान जैसा नहीं होगा, वह कोई हिमालयी शख्सियत होगा। बल्कि इस से मुराद उम्मत के ज़वाल की एक हालत है। अपने ज़वाल की बिना पर दज्जाल की बातें उम्मत की नफ़िसयात

को एड्रेस करेंगी। दज्जाल की मक्कबूलियत इस बिना पर नहीं होगी कि वह जिस्मानी एतिबार से कोई ग़ैर-मामूली इंसान होगा। बल्कि इसका सबब उम्मत की ज्वाल-याफ़ता नफ़िसयात होगी, जो अपनी बिगड़ी हुई नफ़िसयात की बिना पर फ़र्जी तौर पर दज्जाल को अपना नजात-दहिंदा समझ लेगी।

एक हदीस में आया है:

لَا تَقُومُ السَّاعَةُ حَتَّى لَا يُقَالَ فِي الْأَرْضِ: اللَّهُ

यानी, क्रियामत उस वक़्त आएगी, जब ज़मीन पर कोई अल्लाह-अल्लाह कहने वाला बाक़ी नहीं रहेगा। (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 148)

इससे मुराद दुनिया की आम क्रौमें नहीं हैं, बल्कि इससे मुराद उम्मत-ए-मुस्लिमह है। मज़ीद यह कि अल्लाह-अल्लाह न कहने का मतलब लफ़्ज़ी ज़िक्र नहीं है। बल्कि इसका मतलब यह है कि उम्मत-ए-मुस्लिमह का अल्लाह रब्बुल आलमीन से आरिफ़ाना ताल्लुक ख़त्म हो जाएगा, और ग़ैर-अल्लाह उनके लिए अस्त कन्सर्न (sole concern) की हैसियत इख़्तियार कर लेगा।

कुरआन के मुताबिक़, इंसान से सबसे ज़्यादा जो चीज़ मतलूब है, वह यह है कि इंसान अल्लाह रब्बुल आलमीन को अपना सोल कन्सर्न (sole concern) बनाए। उसको हुब्ब-ए-शदीद का ताल्लुक सिर्फ़ अल्लाह रब्बुल आलमीन से हो। मगर हर ज़माने में, और आज भी, इंसान की यह कमज़ोरी रही है कि वह अल्लाह रब्बुल आलमीन को देख न पाने की वजह से किसी न किसी ग़ैर-ख़ुदा को अल्लाह रब्बुल आलमीन के मक़ाम पर बिठाता रहा है। किसी न किसी ग़ैर-ख़ुदा को वह अपनी ज़िंदगी का असल मरकज़ (sole concern) बनाता रहा है। मसलन:

The transfer of the divine seat from God to Nature.

The transfer of the divine seat from God to King.

The transfer of the divine seat from God to Holymen.

The transfer of the divine seat from God to Dollar.

The transfer of the divine seat from God to Self.

The transfer of the divine seat from God to Children.

मुस्लिम दुनिया में अल्लाह से आरिफ़ाना ताल्लुक़ ख़त्म होने का हादिसा अचानक पेश नहीं आया है। यह हादिसा एक लंबे प्रोसेस के तहत पेश आया है। इस्लाम के दौर-ए-अव्वल में एशिया और अफ़्रीका में, जब मुसलमानों की बड़ी-बड़ी सल्तनतें क़ायम नहीं हुई थीं, उस वक़्त मुसलमानों का एतिमाद सिर्फ़ अल्लाह पर होता था। उसके बाद जब मुसलमानों की सल्तनतें क़ायम हो गईं, तो मुसलमानों का एतिमाद अल्लाह पर कमज़ोर हो गया। अब वह मुस्लिम सल्तनतों पर शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर एतिमाद करने लगे। यानी:

The transfer of the divine seat from God to Muslim political power.

उसके बाद उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी में, जब मगरिबी क़ौमों को उरूज हासिल हुआ और मुग़ल एम्पायर और टर्किश एम्पायर जैसी मुस्लिम सल्तनतें ख़त्म हो गईं, तो इस एतिबार से मुस्लिम दुनिया में एक सियासी ख़ला पैदा हो गया। इस सियासी ख़ला की बिना पर मुसलमानों के अंदर ख़ौफ़ की नफ़िसयात पैदा हो गई। अब उनका कन्सर्न अपनी मिल्लत पर क़रार पाया।

इस सियासी ख़ला को पुर करने के लिए मुसलमान ज़्यादा से ज़्यादा अपनी मिल्लत की तरफ़ माइल होने लगे। उनके अंदर शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर यह ज़ेहन बना कि अब उनके लिए बाइंडिंग फ़ोर्स सिर्फ़ उनकी अपनी मिल्लत है। इस तरह मुसलमान नफ़िसयाती

एतिबार से दूसरी क्रौमों से दूर और मुसलमानों से करीब आने लगे। इसके नतीजे में फ़ितरी तौर पर मुसलमानों का यह मिज़ाज बना कि मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम के बारे में जो आदमी मुसलमानों की एक तरफ़ा हिमायत करे, वह उनका अपना आदमी है, और जो मुसलमानों की एक तरफ़ा हिमायत न करे, वह अमलन उनके हरीफ़ का साथी है। इस तरह मुसलमानों के लिए ग़ैर-शऊरी तौर पर अमलन मुस्लिम क्रौम 'अस्ल कन्सर्न' (सबसे बड़ा मुद्दा) बन गई।

इसी क्रिस्म की फ़िज़ा है, जिसमें दज्जाल उभरेगा। वह मुसलमानों की इस नफ़िसयात को फ़ीड करेगा। वह तमाम मसाइल में एक तरफ़ा तौर पर ग़ैर-मुस्लिम क्रौमों को और ग़ैर-मुस्लिम मीडिया को ज़िम्मेदार ठहराएगा, और मुसलमानों को एक तरफ़ा तौर पर बे-कुसूर जाहिर करेगा। इस बिना पर मुसलमान यह समझेंगे कि वही उनका अपना आदमी है। वही उनके मफ़ाद की हिफ़ाज़त करने वाला है। यह मिज़ाज बढ़कर यहाँ तक पहुँचेगा कि वह दज्जाल को अपना नजात-दहिंदा समझ लेंगे।

जब मुसलमानों में अल्लाह पर एतिमाद मौजूद हो, तो उनका हाल यह होता है कि ख़ौफ़ की हालत उनके ताल्लुक़ बिल्लाह में इज़ाफ़ा करने वाली बन जाती है। जैसा कि कुरआन में आया है:

الَّذِينَ قَالَ لَهُمُ النَّاسُ إِنَّ النَّاسَ قَدْ جَمَعُوا لَكُمْ فَاخْشَوْهُمْ فَزَادَهُمْ إِيمَانًا وَقَالُوا حَسْبُنَا اللَّهُ وَنِعْمَ الْوَكِيلُ

यानी, जिनसे लोगों ने कहा कि दुश्मन ने तुम्हारे खिलाफ़ बड़ी ताक़त जमा कर ली है, उससे डरो। लेकिन इस चीज़ ने उनके ईमान में और इज़ाफ़ा कर दिया, और वह बोले कि अल्लाह हमारे लिए काफ़ी है और वह बेहतरीन कारसाज़ है। (3:173)

दज्जाल के फ़ेल को दजल (धोखा और फ़रेब) क्यों कहा गया?

क्योंकि वह इस्लाम के नाम पर मुसलमानों को इस्लाम से दूर करेगा। वह इस्लाम के नाम पर ग़ैर-इस्लाम को फ़रोज़ देगा। दज्जाल की पूरी सरगर्मियों का मरकज़ यह होगा कि वह मुसलमानों के मफ़रूज़ा दुश्मनों को दीन का लेबल लगाकर अवामी ज़बान में ललकारेगा। वह स्टेज के मैदान में बज़ाहिर मफ़रूज़ा दुश्मनों को शिकस्त देगा। ग़लत तौर पर मुसलमानों को इस ग़लतफ़हमी में डालेगा कि हमने तुम्हारे दुश्मनों को ज़ेर कर दिया है। मगर दज्जाल का यह सारा मामला अपनी हक़ीक़त के एतिबार से इस्लाम-दुश्मनी का मामला होगा, क्योंकि उसकी बातें मुसलमानों की तवज्जोह को अल्लाह के बजाय ग़ैर-अल्लाह की तरफ़ माइल कर देंगी।

मुसलमानों की सही रहनुमाई करने वाला वह है, जिसकी रहनुमाई से मुसलमानों में अल्लाह पर यक़ीन बढ़े। उनके अंदर अल्लाह का तक्रवा पैदा हो। वह सबसे ज़्यादा अल्लाह से मुहब्बत करने वाले बन जाएँ। उनको सबसे ज़्यादा शौक़ जन्नत का हो। उनका सबसे ज़्यादा एहतिमाम आख़िरत के लिए हो जाए। वह अपनी ज़िंदगी में:

وَلَمْ يَخْشَ إِلَّا اللَّهَ

के मिस्दाक़ बन जाएँ, यानी वह अल्लाह के सिवा किसी से न डरें।

(9:18)

मगर बरअक्स तौर पर उनके साथ यह वाक़िआ पेश आएगा कि, मसलन, वह दज्जाल की मनफ़ी बातों से धोखे में आकर दूसरी क़ौमों से नफ़रत करने लगेंगे। दूसरी क़ौमों को वह अपना दुश्मन और साज़िश समझने लगेंगे। वह ग़लत तौर पर यह फ़र्ज़ कर लेंगे कि उनके हर मसले का ज़िम्मेदार दूसरी क़ौमों हैं। इस तरह वह इस्लाम के नाम पर ग़ैर-इस्लामी सरगर्मियों में मुब्तला हो जाएँगे। इसके नतीजे में उनके अंदर इंसानों को ख़ुदा के मसूबा-ए-तख़लीक़ (creation plan) से आगाह करने का

ज़ेहन बिलकुल ख़त्म हो जाएगा। क्योंकि यह स्पिरिट उस वक़्त पैदा होती है, जब मुसलमानों के अंदर आम इंसान के लिए ख़ैरख्वाही का ज़ब्बा हो, जबकि दज्जाल मुसलमानों के अंदर से इंसानी ख़ैरख्वाही का कुल्लती ख़ातमा कर देगा।

निशानियों का ज़ाहिर होना



हदीस में दज्जाल को तारीख़ का अज़ीमतरीन फ़ित्ना बताया गया है। दज्जाल के बारे में रिवायतें हदीस की तक्ररीबन तमाम किताबों में आई हैं। इन रिवायतों के गहरे मुताले से यह समझ में आता है कि दज्जाल किसी फ़र्द-ए-वाहिद का नाम नहीं है, बल्कि एक दज्जाली दौर का नाम है। यह दौर ग़ालिबन वही है, जिसको मग़रिबी तहज़ीब का दौर कहा जाता है। दज्जाल के लिए जिन ग़ैर-मामूली ताक़तों का ज़िक्र है, वह सब तम्सील के मानी में हैं, और यह वही ताक़तें हैं, जो जदीद दौर में टेक्नॉलजी की तरक्की से इंसान को हासिल हुई हैं।

मसलन हदीस में आया है:

يُنَادَى بِصَوْتٍ لَهُ يُسْمَعُ بِهِ مَا بَيْنَ الْخَافِقَيْنِ

यानी वह ऐसी आवाज़ में पुकारेगा, जो मशरिक़ व मग़रिब के दरमियान सुनाई देगी। (कंज़ुल उम्माल, हदीस नंबर 39709)

इससे मुराद वाज़ेह तौर पर जदीद कम्युनिकेशन है। इसके ज़रिये यह मुमकिन हो गया है कि आदमी एक मुक़ाम से बोले और उसी वक़्त तमाम दुनिया में उसकी आवाज़ सुनी जा सके।

इसी तरह हदीस में आया है: हम लोगों ने पूछा कि ज़मीन में उसकी रफ़्तार कैसी होगी? आपने कहा, “जैसे बारिश, जिसको तेज़ आँधी उड़ा ले जाती हो।” इससे मुराद वाज़ेह तौर पर हवाई सफ़र है।
(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2937)

इसी तरह हदीस में आया है: “उसके साथ रोटी का पहाड़ और पानी का दरिया होगा।” (अल-मुअज़मुल कबीर लिच्छबरांनी, हदीस नंबर 14292)

इसका मतलब यह है कि उस दौर में ज़िंदगी की ज़रूरतों के ज़रायों में बहुत बड़ी बढ़ोतरी होगी। इसके नतीजे में ज़िंदगी की ज़रूरतों और ज़रायों की बहुत ज़्यादा फरावानी हो जाएगी। मिसाल के तौर पर, हाथ से की जाने वाली खेती की जगह मशीनों के ज़रिये खेती करना मुमकिन हो जाएगा। ‘डी-सैलिनेशन’ के ज़रिये समंदर के पानी का मीठे पानी में तब्दील होना, वगैरह।

दज्जाल का दौर ग़ालिबन वही दौर है, जब दुनिया और इंसान के अंदर मौजूद ख़ुदा की निशानियाँ बड़े पैमाने पर सामने आएँगी, और हक़ की आला तब्यीन मुमकिन हो जाएगी (फ़ुस्सिलत, 41:53)। लेकिन ऐन इसी ज़माने में दज्जाली ज़ेहन के लोग बहुत बड़े पैमाने पर ग़लत ताबीर (misinterpretation) का काम करेंगे, और ज़ाहिर होने वाले दलाइल को ख़ालिक़ का कारनामा बताने के बजाय उनको मख़लूक़ की तरफ़ मंसूब कर देंगे। इस तरह हक़ीक़त के जुहूर-ए-कामिल के दौर में भी लोगों को ग़लत मायने निकालकर भटका देंगे। ग़ालिबन यही वह ज़ाहिरा है, जिसको हदीस में फ़ित्ना-ए-दुहैमा कहा गया है, यानी बड़े अँधेरे (utter darkness) का दौर। (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4242)

हक्रायक़ की ग़लत ताबीर क्या होगी? वह यह है कि इल्म के तमाम इदारों और रिसर्च के तमाम शोबों को इस तरह मुनज़्ज़म किया जाएगा कि उनकी तहक़ीक़ात इंसान के लिए ख़ुदा की मारिफ़त बनने के बजाय

खुदा के वुजूद का इनकार या उससे बेखबरी का ज़रिया बन जाएँ। मसलन, ज़िंदगी कैसे वुजूद में आई, हैवान और इंसान कैसे बने—इसके बारे में हयातियाती इर्तिका (biological evolution) का नज़रिया वज़अ किया जाएगा, और उसको इतना ज़्यादा आम किया जाएगा कि हर तालीमी इदारे और हर लाइब्रेरी में इसी नज़रिए की गूँज सुनाई देगी। इसी तरह मादा (matter) के अंदर मुख्तलिफ़ ख़वास क्यों हैं, उनके बारे में यह नज़रिया वज़अ किया गया कि यह सब फ़ितरत के क़ानून (inherent laws of nature) का नतीजा है। इस क़िस्म के बे-ख़ुदा नज़रियात को इल्म के मुख्तलिफ़ शोबों के ज़रिये इतना ज़्यादा फैलाया गया कि तक्ररीबन पूरी दुनिया में इन नज़रियात को शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर बरहक़ मान लिया गया।

दज्जाल के बारे में हदीस में दो अहम बातें आई हैं। एक यह कि एक रज़ुल-ए-मोमिन उसका कामयाब मुक़ाबला करेगा (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2938)। दूसरी रिवायत से मालूम होता है कि मसीह दज्जाल को क़त्ल करेंगे (सुनन तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2244)। यह बात ग़ालिबन दो फ़र्द की बात नहीं है, बल्कि दो गिरोह की बात है। दज्जाल के फ़ित्ने का ख़ात्मा ग़ालिबन दो गिरोह करेंगे। एक ग़ालिबन पैरवान-ए-मुहम्मद के मुंतख़ब अफ़राद का गिरोह, और दूसरा ग़ालिबन पैरवान-ए-मसीह के मुंतख़ब अफ़राद का गिरोह।

मज़ीद ग़ौर किया जाए, तो मालूम होगा कि “क़त्ल-ए-दज्जाल” या दज्जाली फ़ित्ने के ख़ात्मे का आगाज़ अमलन वाक़े हो चुका है। इस मामले में मसीही अहल-ए-इल्म ने बड़े पैमाने पर दज्जाली फ़ित्ने के इल्मी मुक़ाबले का काम किया है। मसलन, दज्जाली फ़ित्ने के दौरान एक ख़तरनाक नज़रिया पैदा हुआ, जिसको ह्यूमनिज़्म कहा जाता है। ह्यूमनिज़्म का ख़ुलासा एक शख्स ने इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है—ख़ुदा की सीट पर इंसान को बिठाना:

Transfer of seat from God to man.

इस नज़रिए की ताईद में सेक्यूलर लोगों ने बड़ी तादाद में किताबें लिखी हैं। उनमें से एक किताब यह है:

Man Stands Alone by Julian Huxley ⁽¹⁹⁴¹⁾

खुदा के इनकार पर जब यह किताब छपी, तो उसके बाद अमरीका के एक मसीही साइंसदाँ ने उसके जवाब में मुदल्लल किताब शाए की। वह किताब यह थी:

Man Does Not Stand Alone by Abraham Cressy Morrison, Fleming H. Revell Company, 1944.

इसी तरह दीगर मसीही अहल-ए-इल्म ने भी बड़ी तादाद में किताबें शाए की हैं। उनमें से एक किताब वह है, जो चालीस साइंसदानों के मज़ामीन पर मुश्तमिल है। उसका नाम यह है:

The Evidence of God in an Expanding Universe.
Edited by John Clover Monsma, Published: 1958.

साइंस का मौजू काइनात (physical world) का मुताला है। तक्रीबन चार सौ साल के मुताले के बाद साइंस ने जिस दुनिया को हमारे सामने रखा है, वह तर्क और निष्कर्ष (inference) की बिना पर खालिक के वुजूद की गवाही देती है। लेकिन ग़ालिबन किसी साइंसदाँ ने खुले तौर पर खुदा के वुजूद का इक़्रार नहीं किया है। उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि अल्बर्ट आइंस्टाइन (1879–1955) की तरह उनका केस खुले तौर पर खुदा के इनकार (atheism) का केस नहीं है, बल्कि उनका केस ला-अदरी (agnosticism) का केस है। क्वांटम फ़िज़िक्स के नज़रिए को अगर इस मामले पर मुन्तबिक्क किया जाए, तो यह कहा जा सकता है:

Probably there is a God.

यह खालिस साइंस का मौक्रिफ़ है। लेकिन जहाँ इंसान के विज्दान (intuition) का ताल्लुक़ है, उसकी सतह पर खुदा का वुजूद उतना ही यक्रीनी है, जितना कि इंसान का वुजूद। मशहूर फ़्रांसीसी फ़िलसफ़ी डिकार्ट (René Descartes, 1596–1650) ने कहा था, “मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।”

I think therefore I am.

(Discourse on the Method, Introduction, p. 18)

इस उसूल को तौसीअ देते हुए यह कहना सही होगा—मेरा वुजूद है, इसलिए खुदा का भी वुजूद है।

I am, therefore God is.



यहूद की मिसाल



कुरआन में यहूद की तारीख़ का एक नसीहत-आमेज़ वाक़िआ सूरए अल-इसरा की इब्तिदाई चंद आयतों में बयान किया गया है। उन आयतों का तर्जुमा यह है:

और हमने बनी इस्राईल को किताब में बता दिया था कि तुम दो मर्तबा ज़मीन में ख़राबी करोगे और बड़ी सरकशी दिखाओगे। फिर जब पहले वादे का वक़्त आया, तो हमने तुम्हारे खिलाफ़ अपने ऐसे बंदे भेजे जो बड़ी ताक़त वाले थे। वे तुम्हारे घरों के अंदर तक घुस गए, और वह वादा पूरा होकर रहा। फिर जब पहले वादे का वक़्त आया, तो हमने तुम्हारे खिलाफ़ अपने ऐसे बंदे भेजे जो बड़ी ताक़त वाले थे। वे तुम्हारे

घरों के अंदर तक घुस गए, और वह वादा पूरा होकर रहा। अगर तुम अच्छा काम करोगे तो तुम अपने लिए अच्छा करोगे और अगर तुम बुरा करोगे तब भी अपने लिए बुरा करोगे। फिर जब दूसरे वादे का वक़्त आया तो हमने और बंदे भेजे कि वह तुम्हारे चेहरों को बिगाड़ दें और मस्जिद में घुस जाएँ जिस तरह वह उसमें पहली बार घुसे थे और जिस चीज़ पर उनका ज़ोर चले उसको बर्बाद कर दें (17:4-7)।

क़ुरआन की इन आयतों में यहूद के बिगाड़ का ज़िक्र है। लेकिन उसके बाद यह नहीं फ़रमाया कि यहूद के अंदर हमने मुस्लिहीन पैदा किए। बल्कि यह फ़रमाया कि उनके खिलाफ़ हमने अपने ज़ोर-आवर बंदे भेजे, जिन्होंने उनको तबाह व बर्बाद किया। इसकी वजह क्या है। यहूद (बनी इस्राईल) की तारीख़ में दो बार यह वाक़िआ पेश आया। उनको एक बार 586 क़ब्बल मसीह में बाबिल व नीनवा के बादशाह नबूकद नज़र के हाथों तबाही का सामना करना पड़ा, और दूसरी बार 70 ईसवी रूमी बादशाह टाइटस (Titus) के ज़माने में। इन दोनों ने क्रौम-ए-यहूद को फ़िलस्तीन के इलाक़े से निकाल कर बैरूनी इलाक़े में ज़िलावतन कर दिया (तफ़सील: तफ़सीर-ए-माजिदी, सूरह बनी इस्राईल, आयत 41)। यही वह लोग हैं, जिनको तारीख़ में डायस्पोरा (diaspora) कहा जाता है।

बनी इस्राईल के साथ जो वाक़िआ पेश आया, वह बज़ाहिर सज़ा का मामला था, लेकिन अस्लन उसका मक़सद यह था कि क़दीम ज़माने में यहूदी नस्लों में जो ज़वाल आ गया था, उसको तोड़ा जाए, और यहूद को दोबारा यह मौक़ा दिया जाए कि वह अपनी नस्लों के अंदर बेदारी लाएँ, और उनको सुधार का मौक़ा मिल सके। यह खुदाई क़ानून ब-शुमूल उम्मत-ए-मुस्लिमा दुनिया की तमाम क्रौमों के लिए यक़साँ तौर पर लागू है।

मुश्किल दौर (harsh treatment) का यह अमल यहूद के साथ कई सौ साल तक जारी रहा। यहाँ तक कि 1948 में उनको दोबारा

यह मौक्रा दिया गया कि वह फ़िलस्तीन के इलाक़े में लौट कर आएँ, और अपनी नई ज़िंदगी शुरू करें। बदक्रिस्मती से बनी इस्राईल की यह वापसी मुस्बत वापसी न बन सकी। इस वापसी के साथ यहूदियों और अरबों के दरमियान एक ख़ूनी तसादुम शुरू हो गया, और इस तरह वह इमकान वाक्रिआ न बन सका, जो इस मामले में छुपा हुआ था।

अगर मुसलमान यहूद को सियासी दुश्मन समझने के बजाय मदऊ समझते, और ख़ैराख्वाही के साथ उनके दरमियान ख़ुदाई पैग़ाम पहुँचाने का काम करते तो ऐन मुमकिन था कि मुसलमानों के साथ जुड़ई या कुल्ली तौर पर वही वाक्रिआ पेश आता जो इस आयत में मज़कूर है

وَمَنْ أَحْسَنُ قَوْلًا مِّمَّنْ دَعَا إِلَى اللَّهِ وَعَمِلَ صَالِحًا وَقَالَ إِنِّي
مِنَ الْمُسْلِمِينَ - وَلَا تَسْتَوِي الْحَسَنَةُ وَلَا السَّيِّئَةُ ادْفَعْ بِالَّتِي
هِيَ أَحْسَنُ فَإِذَا الَّذِي بَيْنَكَ وَبَيْنَهُ عَدَاوَةٌ كَأَنَّهُ وَلِيٌّ حَمِيمٌ

यानी, उससे बेहतर किस की बात होगी जिसने अल्लाह की तरफ़ बुलाया और नेक अमल किया और कहा कि मैं फ़रमाँबरदारों में से हूँ। और भलाई और बुराई दोनों बराबर नहीं, तुम जवाब में वह कहो जो उससे बेहतर हो फिर तुम देखोगे कि तुम में और जिसमें दुश्मनी थी, वह ऐसा हो गया जैसे कोई दोस्त क़राबत वाला। (41:33-34)

इसके बरअक्स, यह सोच लेना कि अब क्रौम-ए-यहूद के लिए सच्चाई के रास्ते पर आने का कोई इमकान नहीं है, एक ग़ैर-पैग़ाम्बराना सोच है। रसूलुल्लाह ﷺ इंसानों के राह-ए-रास्त पर आने के हवाले से हमेशा पुरउम्मीद रहे। उसका सुबूत यह है कि अहद-ए-रिसालत से लेकर अब तक हर दौर में यहूदियों ने ख़ुदा के फ़ाइनल पैग़ाम को दरियाफ़्त करके उसको क़बूल किया, और अब भी क़बूल कर रहे हैं। मिसाल के तौर पर ऑस्ट्रिया के लियोपोल्ड असद (1900-1992), और अमरीका की माग़रिट जमीला (1934-2012)। इसी तरह इस बात का भी

कोई सुबूत नहीं है कि यहूद के मामले में कुरआन की मज़कूरा आयत (फ़ुस्सिलत, 41:33-34) लागू नहीं होती है।

कुरआन के इस हुक्म से अंदाज़ा होता है कि मुसलमानों को उम्मत-ए-वसत की हैसियत से यह हक़ नहीं कि वह अबदी तौर पर यहूद को मलऊन समझ लें। मुसलमानों का रवैया यहूद के बारे में हमेशा दोबारा गौर करने के क़ाबिल (worthy of reconsideration) होना चाहिए, न कि नमाज़-रोज़े की तरह अबदी हुक्म।

बामक्रसद ज़िंदगी



एक बार मेरी मुलाक़ात एक तालीमयाफ़्ता मुसलमान से हुई। बात-चीत के दौरान उन्होंने कहा कि हम लोग तो सिर्फ़ पैसा कमाने की मशीन बन गए हैं। यानी पढ़-लिख कर डिग्री लेना, और उसके बाद पैसा कमाना। मगर हक़ीक़त यह है कि इस क्रिस्म के लोगों के लिए दो अच्छे ‘ऑप्शन्स’ हैं। एक है, ‘वन मैन, वन मिशन’, और दूसरा है, ‘वन मैन, टू मिशन’। इन दोनों क्रिस्म की ज़िंदगी को अच्छी ज़िंदगी कहा जाएगा।

अस्ल यह है कि इंसान का एक सोचा-समझा मक्रसद हो, और वह पूरी संजीदगी अपने मक्रसद के हुसूल में लग जाए। ऐसे इंसान के लिए एक काम तो यह है कि वह अपनी सलाहियत के मुताबिक़ रोज़ी कमाए, और फिर अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ अपनी कमाई का इस्तेमाल करे। ऐसे इंसान के लिए दो तरीके हैं। एक, यह ‘है कि वह अपना सारा वक़्त अपने मक्रसद के लिए वक़फ़ कर दे, और कमाई के मामले को ‘सेकेंडरी’ बना दे, और दूसरा यह है कि वह अपने वक़्त का

आधा हिस्सा कमाई में लगाए, और आधा हिस्सा उस काम में जिसको उसने अपना मक़सद-ए-हयात बनाया हो। यह दोनों तरीके यक़साँ तौर पर दुरुस्त तरीके हैं।

आदमी हमेशा अपने आपको दो चीज़ों के दरमियान पाता है। एक, अपनी और अपनी फ़ैमिली के तक्राज़े। दूसरा, अपनी ज़िंदगी के अस्ल मक़सद के तक्राज़े। आदमी अगर किसी एक चीज़ की तरफ़ मुकम्मल तौर पर झुक जाए, तो वह इस क़ाबिल नहीं रहेगा कि अपनी ज़िंदगी के दूसरे तक्राज़े को पूरा कर सके। इसलिए क़ाबिल-ए-अमल बात यह है कि आदमी अपने आपको दो चीज़ों के दरमियान बाँट ले। एक हिस्सा अपने मक़सद को पूरा करने के लिए रखे, और दूसरा हिस्सा अपनी मादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए। इस तरह दोनों तक्राज़े पूरे होते रहेंगे, और वह बक्रद-ए-ज़रूरत एक कामयाब इंसान बन सकेगा, यानी वह अपने आपको इस उसूल पर कायम कर ले, जिसको मैं 'वन मैन टू मिशन' से ताबीर करता हूँ।



तरीक़-ए-मुताला



एक साहब ने हमारे व्हाट्सऐप पर दर्ज-ए-ज़ैल मैसेज भेजा है

स: अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह, स्कॉलरों और मुफ़स्सिरों को पढ़ने के बारे में मेरा तरीका यह है कि मैं लगभग सबको पढ़ता हूँ। या यूँ कहिए कि जब भी किसी स्कॉलर को पढ़ने या सुनने का मौक़ा मिलता है, मैं उसे पढ़ता और सुनता हूँ, लेकिन उनसे क्या लेना है, इसका मेरा तरीका इस मिसाल से समझा जा सकता है। जिस तरह एक गाय घास खाती है, मुख़्तलिफ़ क्रिस्म का चारा वगैरह खाती है, पानी

पीती है, उसके बाद उसके हाज़मे का निज़ाम बे-फ़ायेदा और ग़ैर-ज़रूरी चीज़ों को ख़ारिज कर देता है और सिर्फ़ फ़ायेदेमंद और कारआमद चीज़ों को हज़म करता है और फिर उस सब के नतीजे में गाय दूध जैसी अज़ीम और फ़ायेदेमंद चीज़ निकालती है।

इसी तरह मैं पढ़ता सबको हूँ, और जो बात ज़रूरी और अहम बल्कि कुरआन मजीद और सुन्नत-ए-रसूल के मुताबिक़ मिले उसको ले लेता हूँ, और बाक़ी बातों को छोड़ देता हूँ, यानी मैं किसी मुसन्निफ़ या स्कॉलर की किताबों से फ़ायेदा ज़रूर उठाता हूँ लेकिन किसी किताब से इस हद तक मुतास्सिर नहीं हुआ करता जिस तरह लोगों की अकसरियत किसी स्कॉलर से मुतास्सिर होती है और फिर उसकी फॉलोअर बन जाती है। मेरा यह पढ़ने का तरीका किस हद तक दुरुस्त है, इस सिलसिले में मुझे आप के तब्बिरे का इंतज़ार रहेगा।

(एक क़ारी-ए-अल-रिसाला)

ज: इस सवाल का जवाब यह है कि गाय का मुकाबला (comparison) इंसानी रवैये से करना दुरुस्त नहीं। गाय मुकम्मल तौर पर खुदा के फ़ितरी क़ानून के मुताबिक़ अमल करती है। लेकिन इंसान अपने मामले में अपने इरादा व इख़्तियार के मुताबिक़ अमल करता है।

आपका जो तरीका है, वही मौजूदा ज़माने में अकसर तालीमयाफ़्ता लोगों का तरीका है। यह तरीका बज़ाहिर सही मालूम होता है। लेकिन अपनी हक़ीक़त के एतिबार से यह कोई सही तरीका नहीं है। इस तरीके की ग़लती यह है कि आदमी बज़ाहिर यह कहता है कि वह हर एक को पढ़ता है, लेकिन वह खुद अपने आपको क्राइटीरियन (criterion) बना लेता है। इसलिए इस तरह का पढ़ना अपने आपको पढ़ना होता है, न कि सबको पढ़ना।

सही तरीका यह है कि पहले ऑब्जेक्टिव अंदाज़ में कुरआन व

सुन्नत की रौशनी में यह जानने की कोशिश की जाए कि ख़ालिस क़ुरआन व सुन्नत के एतिबार से सही तरीक़ा क्या है। मिसाल के तौर पर आप अपने तरीक़े के मुताबिक़, सीरत की कोई किताब पढ़ते हैं। उसमें आपको ग़ज़वात के उनवान से बहुत से वाक़ियात मिलते हैं। लेकिन गहराई के साथ देखा जाए तो यह ग़ज़वात हरगिज़ जंग के मानी में नहीं हैं। बल्कि इनकी बेशतर तादाद जंग को अवॉइड करने के मानी में थी।

सामने वाले गिरोह ने अगर रसूलुल्लाह ﷺ को जंग में उलझाना चाहा तो आपने यह कोशिश की कि उनकी तरफ़ से होने वाले जंगी कोशिशों को झड़प में तब्दील कर दिया जाए। गया झड़प के वाक़ियात को सीरत निगारों ने ग़ज़वात का नाम दिया है। हालाँकि वह प्रैक्टिकल विज़डम का इस्तेमाल करके जंग को अवॉइड करने की एक अज़ीम मिसाल है। क्यों कि रसूल अल्लाह ﷺ ने जो किया वह यह था कि आपने हकीमाना तरीक़ा इख़्तियार करते हुए जंगी इक्रदाम को झड़प में तब्दील कर दिया। जैसा कि ख़ंदक़ के मौक़े पर हुआ।

इंसान एक ऐसी मख़्लूक़ है जो किसी माहौल में ज़िंदगी गुज़ारता है। इस माहौल के ज़ेर-ए-असर हर एक इंसान का अपना एक ज़ेहनी साँचा (mindset) बन जाता है। वह अपने इसी बने हुए ज़ेहन (conditioned mind) के तहत चीज़ों को देखता है और राय क़ायम करता है। इसी माइंड सेट को क़ुरआन में शाक़िला (17:84) कहा गया है। क़ुरआन व सुन्नत को दुरुस्त अंदाज़ में समझने की लाज़िमी शर्त यह है कि आदमी अपने इस ख़ुदसाख़्ता शाक़िले को तोड़े और रब्बानी शाक़िले की रौशनी में वह दीन का मुताला करे। इस के बाद यह मुमकिन है कि वह अपने मुताले से दुरुस्त नतीजा अख़्ज कर सके।



लिखने का कल्चर



मौलाना सैयद सुलेमान नदवी (1884-1953) जब नदवतुल उलमा (लखनऊ) में उस्ताद थे, तो उनसे उनके एक तालिब-ए-इल्म ने सवाल किया कि कब लिखना चाहिए। इस पर उन्होंने नसीहत करते हुए कहा: इतना पढ़ो, इतना पढ़ो कि उबलने लगे, उसके बाद लिखो। यह एक साहिब-ए-तस्नीफ़ आलिम का निहायत कारआमद मशवरा है। लेकिन यह मुताला किसी मौजू पर इल्मी अंदाज़ में होना चाहिए। मिसाल के तौर पर अगर आप यह करें कि सुबह से शाम तक उर्दू अख़बारात पढ़ें, और फिर मज़मून लिखने बैठ जाएं तो ऐसे मज़मून में कोई गहराई नहीं होगी। सरसरी मुताले से सरसरी मज़मून लिखना आएगा, और गहरे मुताले से गहरे मज़मून लिखने की सलाहियत पैदा होगी।

गहरा मुताला करने से आदमी के अंदर गहरी सोच पैदा होती है। वह इस क़ाबिल हो जाता है कि ज़्यादा गहरे अंदाज़ में मामलात पर राय क़ायम करे। उसकी राय में मैच्योरिटी आ जाती है। मशहूर इंग्लिश राइटर फ़्रान्सिस बेकन (1561-1626) का मशहूर क़ौल है कि कुछ किताबें सिर्फ़ थोड़ा-सा देखने के लिए होती हैं, कुछ को सरसरी तौर पर पढ़ा जाता है और कुछ किताबों को गहराई से पढ़कर अच्छी तरह समझना पड़ता है यह :

Some books are to be tasted, others to be swallowed,
and some few to be chewed and digested. (The Essays, Oxford,
1890, p. 342)

एक किताब और दूसरी किताब में यह फ़र्क़ इसी लिए पैदा होता है कि कोई लिखने वाला किताब को गहरे मुताले के बाद लिखता है, और कोई सरसरी मुताले के बाद किताब छाप देता है। मुताले के इसी फ़र्क़ की वजह से किताब में फ़र्क़ पैदा हो जाता है। किसी ने कहा है कि

अगर किताब लिखो तो ऐसी किताब लिखो कि जिसको पढ़ा जाए। जो किताब बाज़ार में जाकर रद्दी में फ़रोख्त हो जाए, ऐसी किताब लिखने का क्या फ़ायदा। मौजूदा ज़माने में प्रिंटिंग प्रेस, और फिर ई-रीडर्स, वगैरह की ईजाद के बाद मुताला करना बहुत आसान हो गया है।

लो प्रोफ़ाइल, हाई प्रोफ़ाइल



ग़ज़वा-ए-ख़ैबर का एक सबक़-आमोज़ वाक़िआ हदीस की किताबों में आया है। एक रिवायत के अल्फ़ाज़ यह हैं:

عَنْ أَبِي مُوسَى، قَالَ: كُنَّا مَعَ رَسُولِ اللَّهِ صَلَّى اللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ فِي غَزَاةٍ، فَجَعَلْنَا لَا نَضَعُ شَرْفًا، وَلَا نَعْلُو شَرْفًا، وَلَا نَهْبِطُ فِي وَادٍ إِلَّا رَفَعْنَا أَصْوَاتَنَا بِالتَّكْبِيرِ، قَالَ فَدَنَا مِنَّا رَسُولُ اللَّهِ صَلَّى اللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ فَقَالَ يَا أَيُّهَا النَّاسُ، ازْبِعُوا عَلَى أَنْفُسِكُمْ، فَإِنَّكُمْ لَا تَدْعُونَ أَصَمَّ وَلَا غَائِبًا، إِنَّمَا تَدْعُونَ سَمِيعًا بَصِيرًا

यानी अबूमूसा अशअरी ने बयान किया कि हम रसूलुल्लाह ﷺ के साथ एक ग़ज़वा में थे और हम यह करने लगे कि जब हम किसी ऊँची जगह पर चढ़ते, किसी बुलंदी पर पहुँच जाते या किसी निचले इलाक़े में उतरते, तो ऊँची आवाज़ से तकबीर, यानी अल्लाहु अकबर कहते। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जब हमारे करीब आए तो आपने कहा: ऐ लोगो, अपने आप पर रहम करो, क्योंकि तुम किसी बहरे या ग़ैर मौजूद को नहीं पुकारते हो, बल्कि तुम उस ज़ात को पुकारते हो जो बहुत ज़्यादा सुनने वाला बड़ा देखने वाला है। (सहीह अल-बुख़ारी,

ह० न० 6610)

यह एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि रसूलुल्लाह ﷺ के काम का तरीका क्या था। आप हमेशा लो प्रोफ़ाइल (low profile) में काम करना पसंद करते थे। हाई प्रोफ़ाइल (high profile) में काम करना पैगम्बर-ए-इस्लाम का पसंदीदा तरीका न था।

रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया:

إِنَّ اللَّهَ يُحِبُّ الْعَبْدَ التَّقِيَّ الْغَنِيَّ الْخَفِيَّ

यानी, बेशक अल्लाह-त'आला ऐसे बंदे से मुहब्बत करता है, जो मुत्तक़ी हो, दुनिया से बेनियाज़ हो और नुमाइश से दूर हो। (सहीह मुस्लिम, ह० न० 2965)

यहाँ तक कि इस्लाम में इबादत के मामले में भी लो प्रोफ़ाइल को बहुत ज़्यादा अहमियत दी गई है। हदीस में है कि ऐसा सदक्का करने वाला क़यामत के दिन अर्श के साए में होगा, जो अपने दाएँ हाथ से सदक्का करे तो उसके बाएँ हाथ को ख़बर न हो:

رَجُلٌ تَصَدَّقَ، أَخْفَى حَتَّى لَا تَعْلَمَ شِمَالُهُ مَا تُنْفِقُ يَمِينُهُ

(सहीह अल-बुख़ारी हदीस नंबर 660)

ऐसा क्यों है। लो प्रोफ़ाइल का मतलब है, पब्लिसिटी से दूर रह कर काम करना। यानी ग़ैर-नुमायाँ अंदाज़ में काम करना कि आपका हरीफ़ आपके काम को अपने लिए चैलेंज न समझे। दूसरे फ़रीक़ को आपके काम से किसी ख़तरे का एहसास न हो। वह आपके काम को अपने लिए ग़ैर-अहम समझ कर नज़रअंदाज़ कर दे:

A position of avoiding or not attracting much attention or publicity. Intended to attract no attention or controversy.

यह तरीका बहुत बड़ी हिकमत पर मबनी है। इस तरीका-ए-कार की हिकमत यह है कि लो प्रोफ़ाइल में काम किया जाए तो उससे रिएक्शन

का मसला पैदा नहीं होता। आदमी को यह मौक़ा मिल जाता है कि वह शुरू से आख़िर तक अपना काम जारी रखे, और अपनी मंशा के मुताबिक़ अपने मंसूबे को तक़मील तक पहुँचाए।

लो प्रोफ़ाइल में काम करने की सूरत में ऐसा होता है कि सामने वाले को आपके काम की ख़बर नहीं होती। वह आपके रास्ते में रुकावट डालने का मंसूबा नहीं बनाता, वह आपसे टकराव की कोशिश नहीं करता। इस तरह आपको मौक़ा मिल जाता है कि आप संतुलित अंदाज़ में अपने मंसूबों को मुक़म्मल कर सकें। आपकी पूरी एनर्जी सिर्फ़ अपने मंसूबे की तक़मील में इस्तेमाल हो। ग़ैर-ज़रूरी चीज़ों में जाए होने से बच जाए। इसके मुक़ाबले में हाई प्रोफ़ाइल का मतलब है, नुमायाँ अंदाज़ में काम करना:

A position or approach characterized by a deliberate seeking of prominence or publicity. If someone has a high profile, people notice them and what they do. If you keep a low profile, you avoid doing things that will make people notice you.

हाई प्रोफ़ाइल में काम करना, हमेशा मसला पैदा करने का सबब बन जाता है। फ़रीक़-ए-सानी बहुत जल्द आपके अमल से आगाह हो जाता है, और आपके मुक़ाबले में जवाबी मंसूबा बंदी शुरू कर देता है। इस तरह बहुत जल्द ऐसा होता है कि आप और आमने वाले के दरमियान 'चेन रिएक्शन' शुरू हो जाता है। लो प्रोफ़ाइल में काम करने की सूरत में यह होता है कि आपका वक़्त और आपकी एनर्जी सिर्फ़ अपने मंसूबे की तक़मील में इस्तेमाल होती है। जब कि हाई प्रोफ़ाइल में काम करने की सूरत में आपके वक़्त और आपकी एनर्जी का बड़ा हिस्सा अस्ल मक़सद में लगने के बजाय जवाबी कार्रवाई में गुज़र जाता है।

डायरी 1986



13 जुलाई 1986

आज कल कुछ लोग मुझे बेहद परेशान किए हुए हैं। इन बातों को सोच कर अचानक मेरा दिल भर आया। मेरी आँखों में आँसू आ गए और मेरी ज़बान से निकला:

जिन्होंने सूरज और चाँद की बड़ाई की उनको लोगों ने अपना अवतार बना लिया। जिन्होंने इंसानों की बड़ाई की, उनको अपना बुजुर्ग और पेशवा बना लिया। जिन्होंने क्रौम और मुल्क की बड़ाई की, उनको अपना लीडर बना लिया। मैंने हर एक को छोड़ कर सिर्फ़ खुदा की बड़ाई की तो सारे लोग मेरे दुश्मन बने हुए हैं। कैसी अजीब है यह दुनिया जहाँ हर बड़ाई लोगों को गवारा है, मगर एक खुदा की बड़ाई किसी को गवारा नहीं।

मेरे ऊपर कोई शख्स यह इल्ज़ाम नहीं लगा सकता कि मैंने अल्लाह की वहदानियत में कोई कमी की। अल्लाह के रसूल ﷺ को नहीं माना। आखिरत के हिसाब-किताब का इनकार किया। मेरे ऊपर सारा इल्ज़ाम सिर्फ़ यह है कि तुम हमारे अकाबिर पर तनक़ीद क्यों करते हो। मज़ीद यह कि कोई शख्स आज तक यह साबित न कर सका कि मेरी तनक़ीद क़ुरआन व हदीस के एतिबार से ग़लत होती है।

कैसे अजीब होंगे वह लोग जिनके पास बोलने के लिए कुछ न हो तब भी वह ज़रूरी समझते हैं कि बोलें। जिन्हें किसी इंसान पर ज़बरदस्ती करने का कोई हक़ नहीं होता, फिर भी वे ज़रूरी समझते हैं कि उस पर ज़ोर ज़बरदस्ती करें।

आह, वह इंसान जो खुदा की पकड़ से इतना भी नहीं डरता, जितना कोई शख्स चींटी के काटने से डरता है।

14 जुलाई 1986

12 और 13 जुलाई को मैं पटना में था। पटना के मदरसा शम्सुल हुदा (क्रायमशुदा 1912) में मुझे इस्तेक्रबालिया दिया गया। इस इस्तेक्रबालिया का आगाज़ इस जुमले से होता था—“हम अज़ीमाबाद के इस तारीखी शहर में अपने मेहमान-ए-खुसूसी का इस्तेक्रबाल करते हैं।”

औरंगज़ेब (1618–1707) के एक पोते का नाम शहज़ादा अज़ीम (1664–1712) था। उसी के नाम पर पटना का नाम अज़ीमाबाद रखा गया था। मगर अंग्रेज़ों के ज़माने में वह दोबारा पटना बन गया। उस वक़्त से आज तक तमाम सरकारी कागज़ात में इस शहर का नाम पटना ही लिखा जाता है। कहा जाता है कि पटना का नाम शुरू में “पटन देवी” के नाम पर पड़ा था।

मौजूदा ज़माने के मुसलमानों का यह मिज़ाज उनके लिए ग़ैर-ज़रूरी मसाइल पैदा करने का सबब बना है। जिस शहर को हिंदू मुत्तफ़िक़ा तौर पर “पटना” कहते हों, उसको “अज़ीमाबाद” का नाम देना ग़ैर-ज़रूरी किस्म की नफ़िसयाती पेचीदगी पैदा करना है और एक तबक़े को यह कहने का मौक़ा देना है कि मुसलमान इस मुल्क में दोबारा औरंगज़ेब का अहद वापस लाना चाहते हैं।

1971 में मैं पाकिस्तान गया था और लाहौर में ठहरा था। उस वक़्त मालूम हुआ कि लाहौर में तक्सीम से पहले हिंदुओं ने एक कॉलोनी बनाई थी, जिसका नाम उन्होंने कृष्ण नगर रखा था। तक्सीम के बाद मुसलमानों ने उसका नाम बदलकर इस्लाम नगर रख दिया।

दूसरी तरफ़ कश्मीर में एक शहर है, जिसका पुराना नाम अनंत नाग है। उसका नाम भी मुसलमानों ने बतौर-ए-ख़ुद बदलकर इस्लामाबाद रख छोड़ा है। सरकारी कागज़ात में यह शहर अनंत नाग कहा जाता है और मुसलमानों के ख़ुदसाख़्ता कागज़ात में इस्लामाबाद।

मुसलमानों का यह मामला भी अजीब है। वह पाकिस्तान में भी इस्लामाबाद बनाना चाहते हैं और हिंदुस्तान में भी इस्लामाबाद। जो लोग इतने गैर-हकीकत-पसंद हों, उनके लिए मौजूदा दुनिया में कोई मुस्तक़बिल मुक़दर नहीं।

15 जुलाई 1986

अबुलबरकात अलवी (निज़ामपुर, आजमगढ़) दिल्ली आए। मुलाक़ात के दौरान उन्होंने एक वाक़िआ बताया। बाबरी मस्जिद के मसले पर एक मौलाना साहब ने धुआँधार तक़रीर की। तक़रीर के दौरान उन्होंने बार-बार पुरजोश तौर पर कहा—

“बाबरी मस्जिद आज खून माँगती है।”

अबुलबरकात साहब तक़रीर के बाद उनसे मिले और कहा कि आपने जो कुछ फ़रमाया, वह दुरुस्त है। मैं आपसे सिर्फ़ एक सवाल करना चाहता हूँ। आपने अपनी तक़रीर में कहा कि बाबरी मस्जिद खून माँगती है। मुझको सिर्फ़ इतना और बता दीजिए कि किसका खून— आपके लड़कों का या क्रौम के लड़कों का? अगर आप इसके लिए अपने लड़कों का खून देने के लिए तैयार हों, तो उसके बाद मैं भी अपने बच्चों का खून पेश करूँगा।

यह सुनकर मौलाना साहब ख़ामोश हो गए और कुछ देर के बाद फ़रमाया, “आप अल-रिसाला तो नहीं पढ़ते?”

यह अल्लाह-तआला का फ़ज़ल है कि अल-रिसाला ने पहली बार क्रौम को सोचने-समझने की ताक़त दी है। आज लोग बाशऊर होते जा रहे हैं, जबकि इससे पहले क्रौम के पास बेशऊरी के सिवा और कोई सरमाया न था।

हमारे लीडरों ने क्रौम का ज़ेहन इतना बिगाड़ दिया था कि हमारी क्रौम सोचने-समझने की ताक़त से महरूम हो गई थी। ज़ब्बाती हंगामों

का नाम लोगों के नज़दीक प्रोग्राम था, और जोशीले अशआर और लफ़्ज़ी तक्ररीरों को लोगों ने इस्लामी फ़िक्र समझ लिया था। अल्लाह का फ़ज़ल है कि उसने अल-रिसाला को नए इंक़िलाब का ज़रिया बनाया।

16 जुलाई 1986

15 जुलाई 1986 के अख़बारात में ब-यक-वक़्त दो ख़बरें शाए हुई हैं। एक ख़बर मैंने टाइम्स ऑफ़ इंडिया (15 जुलाई) में देखी। इसमें बताया गया है कि पाकिस्तान की क़ौमी असेंबली ने अहमदाबाद के फ़साद में मुसलमानों के क़त्ल पर फ़िक्र ज़ाहिर की।

दूसरी ख़बर मेरे सामने इंडियन एक्सप्रेस (15 जुलाई) है। इसमें एक ख़बर है, जिसमें बताया गया है कि बांग्लादेश में उस वक़्त तीन लाख की तादाद में बिहारी मुसलमान हैं, जिन्होंने बांग्लादेश क्राइसिस के वक़्त अपने को पाकिस्तानी लिखवाया था। वह पाकिस्तान जाना चाहते हैं, मगर पाकिस्तान उनको लेने से इंकार कर रहा है। इन “बिहारी मुसलमान” ने अव्वलन हिंदुस्तान छोड़ा। उसके बाद वह बांग्लादेश की शहरीयत से महरूम हुए और अब पाकिस्तान में दाखिले की इजाज़त से भी महरूम हैं।

हिंदुस्तान में मुसलमानों के साथ अगर कोई ज़्यादती हो तो पाकिस्तान के लोग ज़ोर-ओ-शोर के साथ उसकी मज़म्मत करते हैं। दूसरी तरफ़ इन पाकिस्तानियों का हाल यह है कि वह खुद मुसलमानों के साथ बड़ी-बड़ी ज़्यादतियाँ कर रहे हैं।

जब मैं इस क्रिस्म की ख़बरें पढ़ता हूँ तो मेरे अंदर सख़्त इश्तिआल पैदा हो जाता है। यह बदतरीन ज़ुर्म है कि आदमी खुद जिस फ़ेल में मुब्तिला हो उसी फ़ेल के लिए दूसरों के खिलाफ़ इस्लामी भाईचारे के नाम पर चीख़ पुकार करे। यह कुफ़्र से भी ज़्यादा संगीन चीज़ है।

काफ़िर खुल्लम खुल्ला मुनकिर-ए-हक़ होता है और यह लोग वह हैं जो काफ़िराना फ़ेल करते हैं और उस पर इस्लाम का लेबल लगाए हुए हैं।

17 जुलाई 1986

अबुलबरकात अलवी (b. 1929) दिल्ली आए। आज उन्होंने अपना एक वाकिआ बताया। वह नवंबर 1946 में देवबंद गए थे। वहाँ वह मौलाना हुसैन अहमद मदनी के मेहमान रहे।

यह ज़माना वह था जब कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग का झगड़ा अपने उरूज पर था। मुस्लिम लीग के आदमी मौलाना हुसैन अहमद साहब की मुखालिफ़त कर रहे थे, बल्कि उनके साथ उन्होंने हर क्रिस्म का ज़िल्लत आमेज़ सुलूक भी किया था। इश्तिआल अंग्रेज़ी की यही फ़िज़ा थी जब कि अबुलबरकात साहब ने देवबंद का सफ़र किया। उन्होंने बताया कि वह मौलाना हुसैन अहमद मदनी के मेहमानख़ाना में थे। मौलाना अपनी चारपाई पर लेटे हुए थे। उस वक़्त एक शख्स आया और उसने कहा

“मौलाना, क़ाइदेआज़म जिन्ना का अल्लाह के यहाँ क्या हश्र होगा?”

मौलाना हुसैन अहमद मदनी यह सवाल सुन कर कुछ देर चुप रहे। फिर फ़रमाया “अगर उसके इरादे नेक हैं तो उसका अज़्र भी नेक होगा। और अगर उसके इरादे नेक नहीं हैं तो उसका अज़्र भी नेक नहीं होगा।”

यह मिसाल बताती है कि सख़्त तरीन इख़्तिलाफ़ की हालत में भी मोमिन का तरीक़ा क्या होता है। मोमिन अल्लाह से डरने वाला इंसान है। उसको यक़ीन होता है कि उसका ख़ुदा उसको देख रहा है और उसके हर क़ौल व फ़ेल का उससे हिसाब लेगा। यह एहसास उसको मजबूर करता है कि वह एक हद पर क़ायम रहे, वह हर हाल में इंसान की बात कहे।

मौलाना हुसैन अहमद मदनी साहब मिस्टर जिन्ना के सख्त मुखालिफ़ थे। दोनों के बीच बहुत कड़वाहट आ चुकी थी। इसके बावजूद जब उन्हें मिस्टर जिन्ना के बारे में बोलना हुआ तो वह अब्दियत के दायरे में रह कर बोले। अपने नापसंदीदा शख्स के बारे में भी वह इंसाफ़ की हद से बाहर न जा सके।

एक इंटरव्यू



(ज़ेरे नज़र इंटरव्यू की पहली क्रिस्त अल-रिसाला जुलाई - अगस्त 2025 में शाए हो चुकी है)

स: आपके खयाल में मदरसों से जुड़े लोग और उलमा अलग-अलग मज़हबों के बीच बातचीत में क्या किरदार निभा सकते हैं?

ज: मेरे खयाल में वह इस ताल्लुक से निहायत मरकज़ी किरदार अदा कर सकते हैं। लेकिन बदक्रिस्मती से वह इसमें मशगूल नहीं हैं। मदारिस को ग़ैर मज़ाहिब के लोगों के साथ मेलजोल के फ़ायदे का एहसास नहीं है। मेरा खयाल है कि इससे तलबा पर मनफ़ी (negative) असर पड़ने के बजाय उन पर मुस्बत (positive) असर पड़ेगा और इससे उनकी मज़हबियत को मज़ीद तक़वियत हासिल होगी।

इस सिलसिले में मैं मौलाना अशरफ़ अली थानवी के एक शागिर्द का वाक़िआ सुनाना चाहूँगा। उन्होंने मौलाना से अपने लड़के की मज़हब से दूरी की शिकायत की। मौलाना थानवी ने उनको मशवरा दिया कि वह अपने इस लड़के को ईसाई स्कूल में भेज दें। चुनाँचे उन्होंने ऐसा ही किया और उसके नतीजे में वह लड़का एक बाअमल मुसलमान बन गया। उसकी वजह यह थी कि यहाँ इस लड़के को

मजहब के ताल्लुक से मुस्तक़िल चैलेंज दरपेश था। उसके ईसाई साथी उससे इस्लाम से मुताल्लिक़ सवालात करते रहते थे। चुनाँचे उसको इस्लाम के मुताल्लिक़ पढ़ना पड़ा। इसी तरह उन लोगों ने उससे नमाज़ के बारे में सवाल किया तो उसके दिल में नमाज़ पढ़ने का ज़ब्बा पैदा हुआ और वह उसका पाबंद हो गया।

इस हवाले से मैं खुद अपनी एक मिसाल पेश करना चाहूँगा। तक्ररीबन पचास साल पहले, जब मैं लखनऊ में था, तो मेरी एक हिंदू स्कॉलर से मुलाक़ात हुई, जो खुदा को नहीं मानता था। उसने मुझसे कहा कि अगर रसूलुल्लाह ﷺ को तारीख़ से हटा दिया जाए तो उससे दुनिया की तारीख़ में कोई फ़र्क़ वाक़े नहीं होगा। मैं उसके इस बयान से बिलकुल नहीं भड़का। उसके बजाय मैंने इस जुमले को एक चैलेंज के तौर पर लिया। उसके बाद मेरे ज़ेहन में एक खास तरह का फ़िक़्री अमल शुरू हो गया। मुसलमान रसूल अल्लाह ﷺ को आख़िरी पैग़ंबर और पूरी इंसानियत के लिए एक नमूना तसव्वुर करते हैं। मज़कूरा शख्स के इस जुमले ने मुझे मजबूर किया कि मैं रसूल अल्लाह ﷺ के तारीख़ी रोल का मुख्तलिफ़ किताबों के हवाले से मुताला करूँ। इस मुताले का नतीजा मेरी किताब “इस्लाम दौर-ए-जदीद का ख़ालिक़” की शक़ल में सामने आया। हक़ीक़त में यह किताब एक नास्तिक शख्स के साथ इंटरएक्शन का नतीजा है। अगर मेरी उस शख्स से मुलाक़ात नहीं होती तो मैं मुतअल्लिक़ा मौज़ू के मुताला पर आमादा भी न होता। बहरहाल इस हवाले से मैं जो कहना चाहता हूँ वह यह है कि मुख्तलिफ़ मज़ाहिब के लोगों के साथ इख़िलात से ख़तरे का जो तसव्वुर है, वह बिलकुल बेबुनियाद है। जो लोग इस ख़तरे के एहसास से दो-चार हैं, वह इस चैलेंज की क़द्र-ओ-क़ीमत को नहीं समझ रहे हैं, जो इस इख़िलात और मेलजोल की देन है। यह मेलजोल बजाए खुद तालीम ही की एक शक़ल और ज़रिया है। अगर मदारिस के लोगों का दूसरे मज़ाहिब के

लोगों के साथ मेलजोल हो तो मेरे खयाल में हिंदुस्तान में इससे हिंदू-मुस्लिम ताल्लुकात के बाब में काफ़ी फ़ायदा हासिल होगा।

स: क्या आप समझते हैं कि दूसरों के साथ मेलजोल को फ़रोग देना उलमा की ज़िम्मेदारी है? लेकिन अगर उलमा मेलजोल में दिलचस्पी न लेते हों तो?

ज: मैं मदरसों को इसका इल्ज़ाम नहीं दे रहा हूँ। मैं तो सिर्फ़ यह कहना चाह रहा हूँ कि दूसरों के दरमियान इस्लाम का तआरुफ़ पेश करना आपसी मेल-जोल पर निर्भर करता है। हज्जतुल विदा के मौक़े पर हज़ारों लोगों के इज्तिमा को खिताब करते हुए रसूल अल्लाह ﷺ ने फ़रमाया था कि मुझे अल्लाह का एक पैग़ाम देकर भेजा गया है। तुम लोगों की ज़िम्मेदारी है कि तुम लोग मेरे बाद उसे पूरी इंसानियत तक आम कर दो (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 67)। चुनाँचे इसके बाद आपके अस्हाब की बड़ी तादाद दावतों-तब्लीग़ के लिए मक्का व मदीना को छोड़ कर दूसरे इलाक़ों में चली गई। यही वजह है कि मदीना और मक्का में अस्हाब-ए-रसूल की बहुत कम क़ब्रें हैं।

स: उलमा के लिए दूसरे लोगों से मेल-जोल बढ़ाने में सबसे बड़ी रुकावट ज़बान की है। ज़्यादातर उलमा उर्दू के अलावा किसी दूसरी ज़बान से वाक्फ़ि नहीं हैं। क्या आपको लगता है कि यह इस सिलसिले की एक बड़ी मुश्किल है?

ज: जहाँ चाह वहाँ राह। मैंने इंग्लिश और हिंदी खुद से सीखी और मैं समझता हूँ कि अगर मदारिस के फ़ारिगीन सही 'अज़म से काम लें तो वह बिल्कुल सीख सकते हैं। जब एक शख्स दूसरों से मेल-जोल क़ायम करता है तो वह आहिस्ता-आहिस्ता उसकी ज़बान भी सीखता जाता है और उनकी तहज़ीब और रिवायतों से भी वह अच्छी तरह वाबस्ता होता जाता है। (जारी)



ईमान का लिबास



वहब बिन मुनबिह (34-114 हि०) एक मशहूर ताबई और जलीलुल-क्रद्र अहल-ए-इल्म में शुमार किए जाते हैं। उनका एक ब-माना क़ौल किताबों में इन अल्फ़ाज़ में नक़ल किया गया है:

الإِيمَانُ عُرْيَانٌ، وَلِبَاسُهُ التَّقْوَى، وَمَالُهُ الْفِقْهُ، وَزِينَتُهُ الْحَيَاءُ

यानी, ईमान बेलिबास है, उसका लिबास तक्रवा है, उसका सरमाया दीन की गहरी समझ है, और उसकी ज़ीनत हया है। (मुसन्नफ़ इब्न अबी शैबा, असर नंबर 35235)

इसका मतलब यह है कि यह तीनों सिफ़ात ईमान की बुनियादी खूबियाँ हैं। यानी यह ईमान के ऐसे ज़रूरी हिस्से हैं, जिनके बग़ैर आदमी का ईमान नामुकम्मल रहता है। जब तक इंसान अपने अंदर यह सिफ़ात पैदा न करे, उसका ईमान महज़ ज़बानी दावा होगा, न कि हक़ीक़ी ईमान।

असल यह है कि ईमान एक अंदरूनी कैफ़ियत है और अमल-ए-सालेह उसका ज़ाहिरी इज़हार। जब इंसान के बातिन में ईमान की सच्चाई और पुख़्तगी न हो, तो उसका ज़ाहिरी अमल अल्लाह की नज़र में नाक़िस शुमार होगा। बल्कि बाज़ औक़ात वह अमल क़ाबिल-ए-रद्द भी हो सकता है। इसी हक़ीक़त को वहब बिन मुनबिह ने “ईमान के बेलिबास होने” से ताबीर किया है।

समाजी लिहाज़ से इस क़ौल का एक और पहलू भी है। यानी जो लोग ईमान का दावा करें, लेकिन उनमें वह सिफ़ात पैदा न हों, जिनको यहाँ तक्रवा, समझदारी और हया कहा गया है, तो वह अपने समाज में ऐसे आमाल करने के मुजरिम हो सकते हैं, जो न सिर्फ़ उनके अपने लिए, बल्कि दीन-ए-इस्लाम के लिए भी बदनामी का बाइस

होंगे। क्योंकि यह सिफ़ात इंसान के लिए बुराइयों के मुक़ाबले में चेक एंड बैलेंस का काम करती हैं और उनको ख़ैर के अमल पर उभारती हैं।

ईमान एक ज़िंदा हकीक़त है। अगर इंसान इसे पूरी संजीदगी के साथ दरियाफ़्त करे, तो यह उसके पूरे वजूद को रब्बानी रंग में रंग देता है (अल-बक्ररह, 2:138), जैसा कि अस्हाब-ए-रसूल के ज़माने में हुआ। लेकिन अगर ईमान के असरात इंसान के किरदार, गुफ़्तार और ताल्लुकात में ज़ाहिर न हों, तो इसका मतलब यह है कि वह महज़ एक बेजान रस्म है, न कि कोई हकीक़ी अमल, जो इंसान के अंदर गहरा इंक़िलाब बरपा कर दे और एक आम इंसान को आला इंसान में बदल दे।

(मौलाना फ़रहाद अहमद)

ख़बरनामा इस्लामी मरकज़



- दोहा इंटरनेशनल बुक फ़ेयर (8 से 17 मई 2025) क़तर की राजधानी दोहा में मुनअक्रिद हुआ। इसमें गुडवर्ड बुक्स ने शिरकत की। इदारे की जानिब से मौलाना मुहम्मद याक़ूब उमरी और मौलाना सैयद इक़बाल अहमद उमरी ने स्टॉल का इंतज़ाम संभाला, जबकि क़तर में मुक़ीम मौलाना अब्दुलबासित उमरी मुक़ामी तौर पर शरीक हुए। मेले में आने वाले ज़ाइरीन और मुख्तलिफ़ एनजीओ के नुमाइंदों को क़ुरआन-ए-करीम के तर्जुमे और दीनी लिटरेचर मुख्तलिफ़ ज़बानों में पेश किया गया, जिसे सबने शुक्र के साथ कुबूल किया। यह सफ़र निहायत मुफ़ीद, उम्मीदअफ़ज़ा और नतीजाखेज़ साबित हुआ।
- 79 वें यौम-ए-आज़ादी (15 अगस्त 2025) के मौक़े पर नेशनल मेडिकल कॉलेज, सहारनपुर में एक प्रोग्राम आयोजित हुआ, जिसकी सदरत कॉलेज के प्रिंसिपल डॉक्टर मुहम्मद असलम

खाँ ने की। इसमें ज़िले की मुमताज़ शख़्सियात ने शिरकत की। अपने सदारती खुत्बे में डॉक्टर असलम ने रूहानियत, उखुव्वत और अच्छी क्रियादत की अहमियत पर ज़ोर दिया। आख़िर में मौलाना वहीदुद्दीन खाँ की किताबें मेहमानों को पेश की गईं और डॉक्टर असलम ने तमाम मुअज़्जिज़ मेहमानों का शुक्रिया अदा किया।

- 18 अगस्त को CPS इंटरनेशनल, दिल्ली का एक डेलीगेशन इदारा तहक़ीक़ व तस्नीफ़-ए-इस्लामी, अलीगढ़ के दौर पर गया, जहाँ इदारे के जिम्मेदारान और रिसर्च स्कॉलर्स के साथ एक इल्मी नशिस्त में फ़िक्री तबादला-ए-खयाल हुआ। वफ़द में मौलाना सैयद इक़बाल अहमद उमरी, मौलाना मुहम्मद याक़ूब उमरी, मिस्टर विक्रांत डागर और मिस्टर बिलाल शफ़ी शामिल थे। इजलास में दौर-ए-हाज़िर में हिकमत, इज्तेहाद और इत्तिहाद-ए-उम्मत जैसे अहम मौजूआत पर गुफ़्तगू की गई। इस प्रोग्राम में रिसर्च स्कॉलर्स के अलावा इदारे के जॉइंट सेक्रेटरी इंजीनियर आफ़ताब हसन, मौलाना कमाल अख़्तर कासमी (रफ़ीक़-ए-इदारा) वग़ैरह शामिल हुए। मौलाना नोमान बद्र फ़लाही (Volunteer) के कलिमात पर इस प्रोग्राम का ख़ातिमा हुआ।
- जामिआ हमदर्द, दिल्ली के एम.ए. इस्लामियात के तलबा ने CPS इंटरनेशनल, नई दिल्ली के तहत चंद हफ़्तों पर मुश्तमिल एक इंटर्नशिप प्रोग्राम मुकम्मल किया, जिसका इख़िताम 19 सितम्बर 2025 को CPS इंटरनेशनल, नई दिल्ली में हुआ। इस प्रोग्राम में तलबा को यह रहनुमाई की गई कि मौजूदा दौर में इस्लाम पर अमल करने के मामले में हम कहाँ ग़लती कर रहे हैं और उसको दूसरों के सामने पेश करने का तरीक़ा क्या होना चाहिए। इसके बाद उन्होंने मुख़्तलिफ़ मौजूआत पर प्रेज़ेंटेशंस पेश किए, जिनमें ख़वातीन और इस्लाम, मारिफ़त, इस्लाम और अमन, और खुदा-रुख़ी ज़िंदगी समेत दीगर मौजूआत शामिल थे।

- 30 सितम्बर 2025 को CPS इंटरनेशनल, दिल्ली की टीम को विद्याज्योति इंस्टिट्यूट ऑफ़ रिलिजस स्टडीज़, नई दिल्ली ने मदद किया। मिस्टर रजत मल्होत्रा, मौलाना फ़रहाद अहमद वगैरह ने शिरकत की। उनके सामने दर्ज-ज़ैल मौजूआत पर खिताबात पेश किए गए—क़ुरआन, मौलाना वहीदुद्दीन खाँ की तालीमात बराए पुरअमन दुनिया, और रसूलुल्लाह ﷺ इंसानियत के लिए एक बेहतरीन नमूना। यह खिताबात मज़हबी मुतालिआत के तलबा के सामने दिए गए थे। लेक्चर के बाद सवाल व जवाब का सेशन हुआ। आखिर में तलबा को अंग्रेज़ी तर्जुमा-ए-क़ुरआन और मौलाना वहीदुद्दीन खाँ साहब की किताबें बतौर तोहफ़ा पेश की गईं।

We sincerely thank you for providing us with the ‘Paighambar-e-Inquilab’ book, which were instrumental in the success of our recent Seerat Quiz Competition. By the grace of Allah and with your valuable support, the program attracted over 400 participants. It proved to be an incredibly inspiring and educational experience for everyone involved. We are receiving overwhelmingly positive feedback from both participants and attendees. What was truly uplifting was that even those who usually don’t engage with Seerah literature were motivated to read the book because of the quiz format. Participants came not only from Rampur but also from places like Moradabad, Khatauli, and Hapur. In fact, my own relatives from various cities now want to organize similar events in their own towns. People are already expressing their hope for this event to become an annual tradition, Alhamdulillah.

Looking ahead, we are planning two more impactful programs, inshaAllah: one based on the book 'Raaz-e-Hayat' and another major initiative on 'Mazhab aur Jadeed Challenge.' These upcoming efforts will have an even wider reach and more ambitious goals, inshaAllah. We humbly ask CPS to continue supporting us in these future endeavors as well. Your help plays a vital role in spreading beneficial knowledge and creating interest in meaningful reading among our youth.

Warm regards,

(Anas Nadeem, Al-Khidmat Foundation, Rampur)

नई किताबें



मौलाना वहीदुद्दीन खाँ साहब के मज़ामीन पर मुश्तमिल दो नई किताबें मंज़र-ए-आम पर आ चुकी हैं:

1. हिकमत-ए-इख़्तिलाफ़: ज़रूरत, अहमियत और दाइरा-ए-कार
2. वतन से मुहब्बत: इस्लामी फ़ि़क़ की रोशनी में

(इस किताब का तर्जुमा अंग्रेज़ी में भी शाए हो चुका है।)

The Spirit of Patriotism: Love for Country that Embraces All Identities

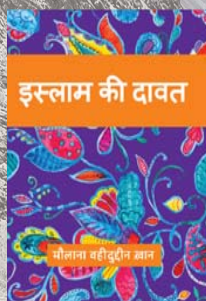
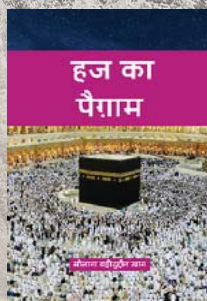
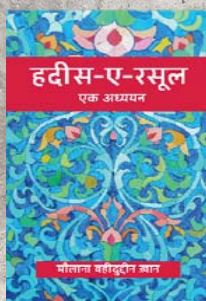
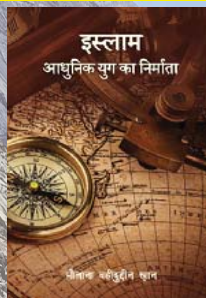
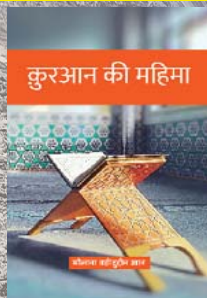
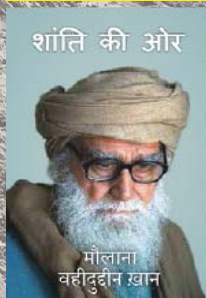
इसके अलावा मौलाना वहीदुद्दीन खाँ साहब की कुछ किताबों के तर्जुमे अंग्रेज़ी में भी शाए हो चुके हैं:

दीन-ए-इंसानियत (The Religion of Humanity)

2. नशरी तक्ररीं (Message on Air)
3. किताब-ए-ज़िंदगी (The Book of Life)
4. तामीर-ए-हयात (Building Life)
5. ताबीर की ग़लती (The Error of Political Islam)



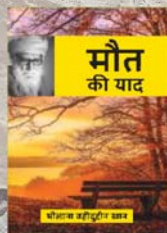
शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें ।



आध्यात्मिक सेट



₹30/-



₹40/-



₹20/-



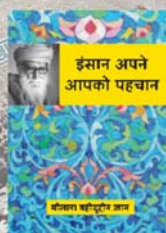
₹40/-



₹30/-



₹45/-



₹20/-



₹40/-